चन्दामामा
जुलाई १९६५
75 P

बच्चों के लिये
स्वास्थ्यवर्द्धक
टॉनिक
लाल-शर
(डाबर बालामृत)
बच्चों के सुन्दर स्वास्थ्य और शारीरिक विकास के लिये मन-पसन्द मीठी पुष्टई।
८२ वर्षों से जन-कल्याण
में संलग्न
डाबर
(डा० एस० के० बर्म्मन) प्राइवेट लि०,
कलकत्ता

चन्दामामा

दिलीप और साथी

खेल के मैदान में भिड़ गये

UC2243

LIFEBUOY
for health
अब
एक नई
शान के साथ!

चन्दामामा

संचालक: चक्रपाणी

"चन्दामामा" में महाभारत की कथा समाप्त हो चुकी है—कई पाठकों का प्रश्न है कि उसके बाद हम क्या देंगे ?

भारत का पौराणिक साहित्य कथा कहानियों से भरपूर है। हम बहुत-सी कहानियाँ यदा कदा देते रहे हैं और देते रहेंगे।

यही नहीं, हम अन्य भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों का कथा रूप भी देते हैं, ताकि हिन्दी के पाठक उनसे अवगत हों। ये "महाभारत" की तरह भले ही प्रसिद्ध न हों, परन्तु ये रोचक है और इनकी विशेष उपादेयता भी है। ये शिक्षाप्रद भी हैं।

वर्ष: १६ जुलाई १९६५ अंक: ११
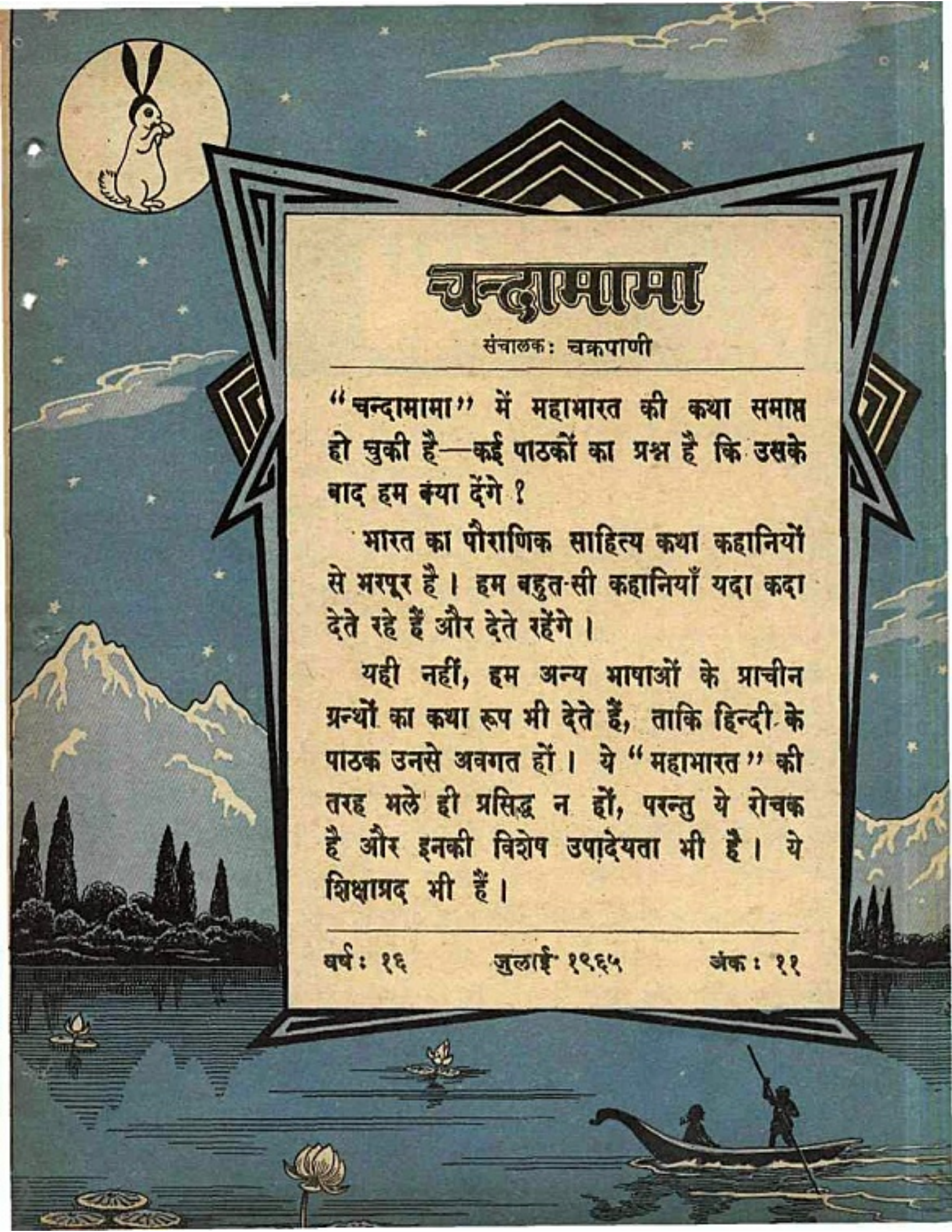
१५९५ तक अकबर का साम्राज्य हिमाचल से नर्मदा के तट तक, हिन्दुकुश से ब्रह्मपुत्र तक विस्तृत था।

अकबर ने अपने साम्राज्य को दक्खिन में विस्तृत करना चाहा। वह अहमद नगर, बीजापुर, गोलकोन्डा, खान देश, आदि को अपने वश में करना चाहता था। अकबर यह भी चाहता था कि पोर्चुगीज़ समुद्र तट से अन्दर न आयें।

दक्षिण देश की सल्तनतें आपसी झगड़ों के कारण कमज़ोर हो गई थीं। और मुगलों का मुकाबला करने की स्थिति में न थीं। १५९१ में अकबर ने अपने दूत उनके पास भेजे और चाहा कि वे उसकी आधीनता स्वीकार करें। परन्तु एक सुल्तान भी इसके लिए न माना। खानदेश के नवाब मिया बहादुरशाह ने भी इनकार कर दिया।

जब बातों से बात न बनी, तो अकबर ने अपने दूसरे लड़के मुराद, बैरम खान के लड़के अब्दुररहीम को सेनापति बनाकर बड़ी सेना के साथ अहमद नगर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। १५९५ में घेरा डाला गया। चान्द बीबी ने इस आक्रमण का बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया। १५९६ में मुगलों ने उससे सन्धि कर ली। सन्धि के अनुसार बरार का ईलाका मुगलों को मिला और मुगलों ने चान्द बीबी के लड़के को अहमद नगर की गद्दी का वारिस माना, पर शर्त यह थी कि वह अकबर की आधीनता को स्वीकार करे। चान्द बीबी को अपना शासन छोड़ना पड़ा। परन्तु उसकी सलाह के

४५. अकबर की मृत्यु

खिलाफ़ नगर के कुछ लोगों ने यह सन्धि न मानी और वे मुगलों को बरार से हटाने का प्रयत्न करने लगे। १५९७ में फरवरी में गोदावरी के तट पर सूप के पास मुगलों को विजय मिली। चान्द बीबी की मृत्यु हुई। १६०० में मुगलों ने अहमद नगर को आसानी से वश में कर लिया।

खानदेश के विजय के लिए स्वयं अकबर निकला। यह उसकी आखिरी विजय थी। इससे पहिले ही अकबर के विरुद्ध उसके लड़के ने विद्रोह कर दिया था और अलाहाबाद जाकर उसने अपने को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया था। उसने १६०२ में अपने पिता के विश्वासपात्र अबुल फजल की हत्या करवा दी थी। १६०३ में सुल्ताना बेगम ने, पिता और पुत्र में सुलह करवायी, पर वह बहुत दिन तक न रही। सलीम फिर अलाहाबाद जाकर गड़बड़ी करने लगा। मानसिंह आदियों ने अकबर को सलाह दी कि वह गद्दी सलीम के लड़के खुस्रो को दे। पर कई ने इसका विरोध किया, अकबर के लड़कों में तब केवल सलीम ही जीवित था। अकबर ने उसको "शरारती" समझकर माफ़ कर दिया। इसके बाद अकबर बहुत दिन जीवित न रहा। वह १७ ओक्टोबर १६०५ में मर गया।

अकबर के व्यक्तित्व के निर्णय में कई परिस्थितियों का प्रभाव था। तैमूर के वंशवाले विजेता तो थे ही, वे ललित-कला प्रिय भी थे। सूफी दर्शन ने उनको ऐसा बना दिया था। अकबर की माँ ने उसमें सहिष्णुता की आदत डाली थी। जब वह काबुल राज्य में था, तो उसको कई सूफी भक्तों के सम्पर्क में रहने का मौका मिला। राजपूत पत्नियों के कारण

उस पर हिन्दू-धर्म का प्रभाव भी पड़ा था। उस समय हिन्दु समाज में कई सुधार भी हो रहे थे।

इसके साथ सारे भारत में मुगल साम्राज्य स्थापना की अभिलाषा ने उसके धार्मिक विचारों में कुछ परिवर्तन कर दिया था। भिन्न भिन्न मतों के भयंकर झगड़े देखकर अकबर पगला-सा गया। अकबर ने सपने देखे कि सब धर्मों के लिए सम्मत धर्म की स्थापना करके, वह अपने साम्राज्य में धार्मिक शान्ति स्थापित कर सकेगा।

उसने मुस्लिम मुल्लाओं के साथ हिन्दु, जैन, पारसी, ईसाई पंडितों की सभा बुल्वाई और उनसे वाद-विवाद किया। उसने सभी मतों में कुछ अच्छाइयाँ देखीं, पर उसने कोई धर्म स्वीकार न किया। उसने "दीने इलाही" नाम के नये धर्म की स्थापना की। उसमें इस्लाम, हिन्दू, ईसाई धर्म के अंश थे। पर उसने उस धर्म को किसी पर जबर्दस्ती नहीं थोपा। उसने मुस्लिम मुल्लाओं को काबू में रखा, उनको मनमानी नहीं करने दिया।

भारत के इतिहास में अकबर को अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण प्रमुख स्थान मिला। वे थे, युद्ध में कुशलता, उदार स्वभाव, न्याय पालन, उत्तम संस्कार, आदि।

"वह साधारण आदमी न था, वह दैवीय था" जहाँगीर ने अपने पिता के बारे में यह कहा था। अकबर में बड़ा धीरज और शारीरिक शक्ति थी। न युद्ध में, न शिकार में ही वह भयभीत होता था। उसका व्यवहार और सम्भाषण भी बड़ा आकर्षक था।
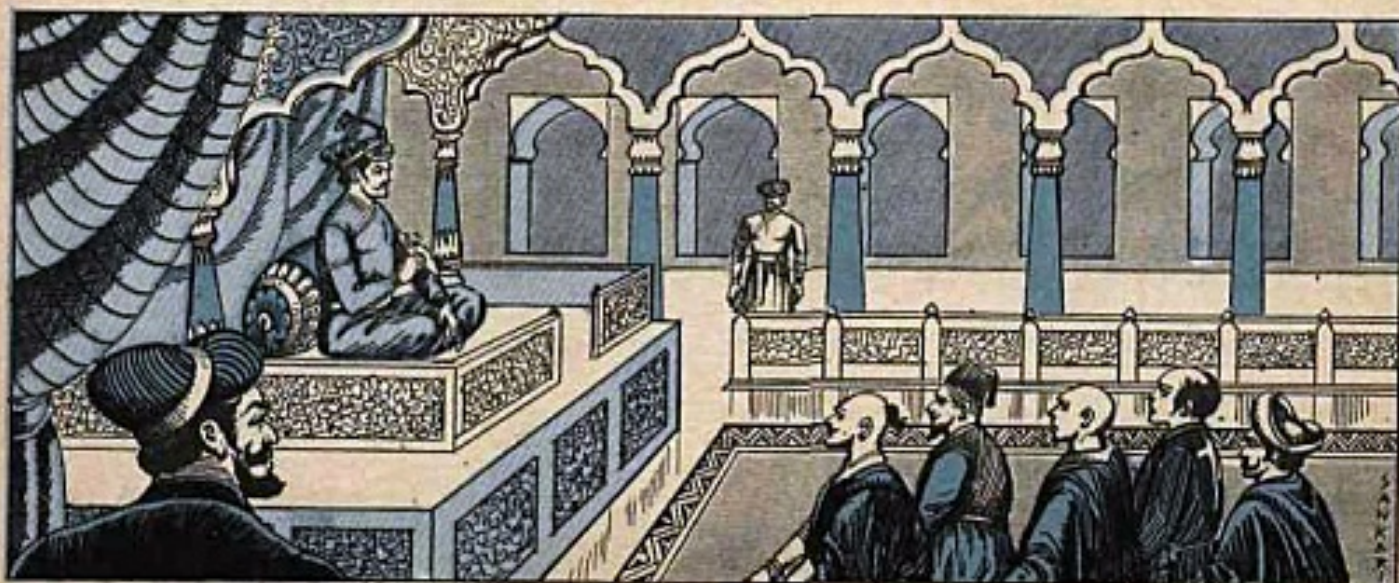
नेहरू की कथा

[१२]

रामचन्द्र महाराष्ट्र का था। वह फीजी में कुछ दिन मजदूर का काम करके, अयोध्या में बस गया था। वह गाँवों में घूमता, तुलसीदास के रामायण के दोहे सुनाता, किसानों के कष्टों के बारे में ध्यान से सुनता। अयोध्या फैजावाद, बरेली, प्रतापगढ़ आदि जिलो में, सीता राम की कहानियाँ बड़ी प्रचलित हैं। हर कोई तुलसी रामायण जानता है। उनमें से चुन चुनकर, रामचन्द्र उदाहरण के रूप में दोहे सुनाता। रामचन्द्र ज्यादह पढ़ा लिखा न था। वह अक्सर किसानों की सभा करता, उनमें मैत्री भाव स्थापित करने का प्रयत्न करता। "सीताराम" को उसने नारा-सा बना दिया था और उससे उसने गाँवों को संगठित किया।

इस तरह संगठित किसानों को वह कुछ अस्पष्ट वचन तो दे सका, पर उनको कोई कार्यक्रम न दे सका। किसान जब उत्तेजित हो उठे, तो उनका मार्ग प्रदर्शन दूसरों को सौंपने के लिए, उसने अलहाबाद की यात्रा की थी। वहाँ भी उसने अपने आन्दोलन का प्रचार किया।
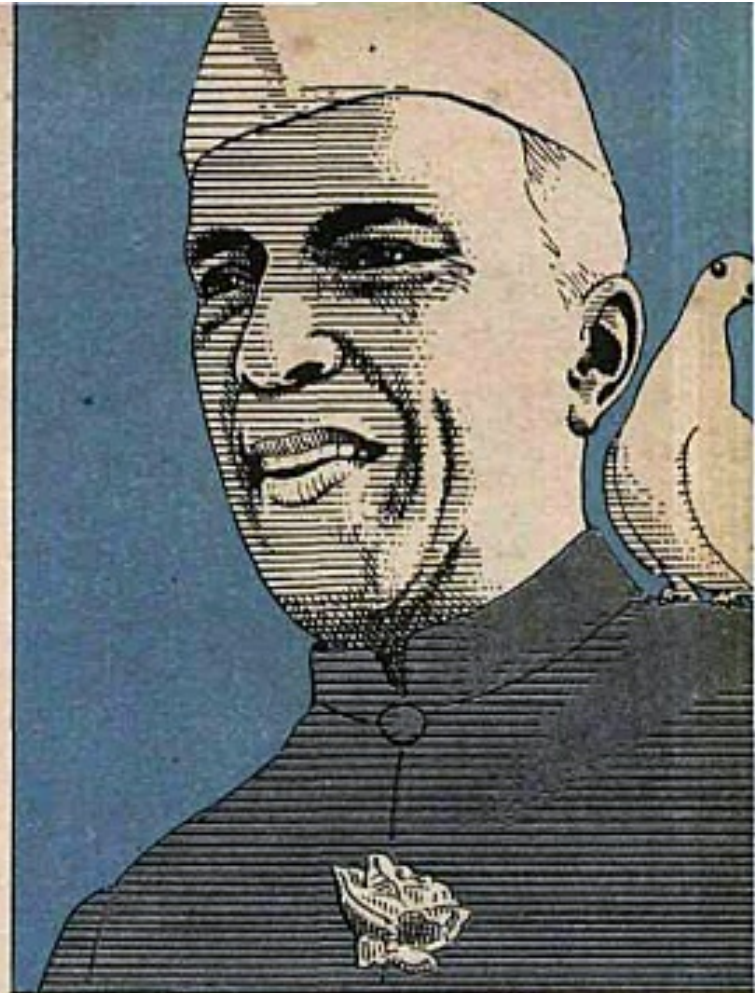
इसके बाद, एक और साल रामचन्द्र किसान आन्दोलन में प्रमुख भाग लेता रहा। दो तीन बार जेल भी गया। फिर उसका व्यवहार कुछ अनियन्त्रित और उद्धत हो गया। वह अविश्वासपात्र भी हो गया। उसे आन्दोलन से हटना पड़ा।

किसान आन्दोलन के लिए अयोध्या ठीक क्षेत्र था। वह तालुकेदारों का अड्डा था, वहाँ जमीन्दारी व्यवस्था बड़ी निकृष्ट

थी। भूस्वामियों का अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गया था। बिना जमीन के, किसान मजदूरों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती थी। क्योंकि सभी किसान एक ही वर्ग के थे इसलिए संगठन के लिए अच्छा मौका मिल गया।

"मोटे तौर पर भारत के दो भाग किये जा सकते हैं। बेन्गाल, बिहार, आगरा, अयोध्या, संयुक्त प्रान्त, जमीन्दारी प्रान्त हैं। बाकी भू-सम्पत्ति वाले कर्षकों के प्रान्त हैं। इन प्रान्तों में भी किसानों की परिस्थिति दयनीय थी। पर उतनी दयनीय नहीं, जितनी कि जमीन्दारी प्रान्तों में थी। और जमीन्दारियों में, तरह तरह के ठेकों पर किसान काम करते हैं। परन्तु अयोध्या में एक ही तरह का रिवाज है। सब को एक साल का ही ठेका मिलता है। यह ठेका उनको ही अक्सर मिलता, जो अधिक पैसा देते। इसलिए यहाँ किसानों का संगठन आसान था।" जवाहरलाल नेहरू ने यों अपनी जीवनी में लिखा है।

यह ठेका भी ठीक न होता था। खेती करनेवाला यदि जमीन्दार को पैसा भी देता, तो उसकी रसीद न दी जाती, न कोई और कागजात ही, यदि जमीन्दार यह कहकर कि उसने पैसा न दिया है, किसी को हटा देता, तो वह कहीं शिकायत भी न कर पाता और भी अनगिनत अन्याय थे। गवर्नर को यदि दावत देनी है, तो एक कर लगाया जाता, कार खरीदनी है, तो रुपया वसूला जाता, हाथी खरीदना है, तो पैसा ऐंठा जाता। कहीं कोई हद न थी, ऐसी बातों की। जवाहरलाल ने सुना था कि कई जगह इस तरह के पचास कर थे।

इस तरह की परिस्थितियों में अयोध्या में किसानों का आन्दोलन पूरे जोरों पर चल पड़ा। जवाहर को यह देख आश्चर्य हुआ कि यह आन्दोलन स्वयं चल पड़ा था। उसका कोई नेता न था। न उसका सम्बन्ध कोन्ग्रेस से था, न उसके असहयोग आन्दोलन से ही। किसी राजनीतिज्ञ ने उसका न समर्थन किया, न विरोध ही। यही कहना होगा कि ये दोनों आन्दोलन एक ही भूमि से पैदा हुए थे। किसानों को गान्धी जी का नाम मालूम था। १९१९ में जो हड़ताल उन्होंने शुरु की, उसमें उन्होंने भी हिस्सा लिया। गान्धी जी का नाम गाँवों में भी सुनाई पड़ने लगा।

परन्तु इन किसान आन्दोलनों के बारे में शहरों में रहनेवाले नहीं जानते थे। उनके बारे में अखबारों में एक लेख भी नहीं लिखा गया। यह देख जवाहरलाल नेहरू को और भी आश्चर्य होता। "हम प्रजा से कितनी दूर हैं। कितने संकुचित क्षेत्र में, हम अपना आन्दोलन चला रहे हैं। तब मुझे मालूम हुआ।" ये जवाहरलाल नेहरू के शब्द हैं।
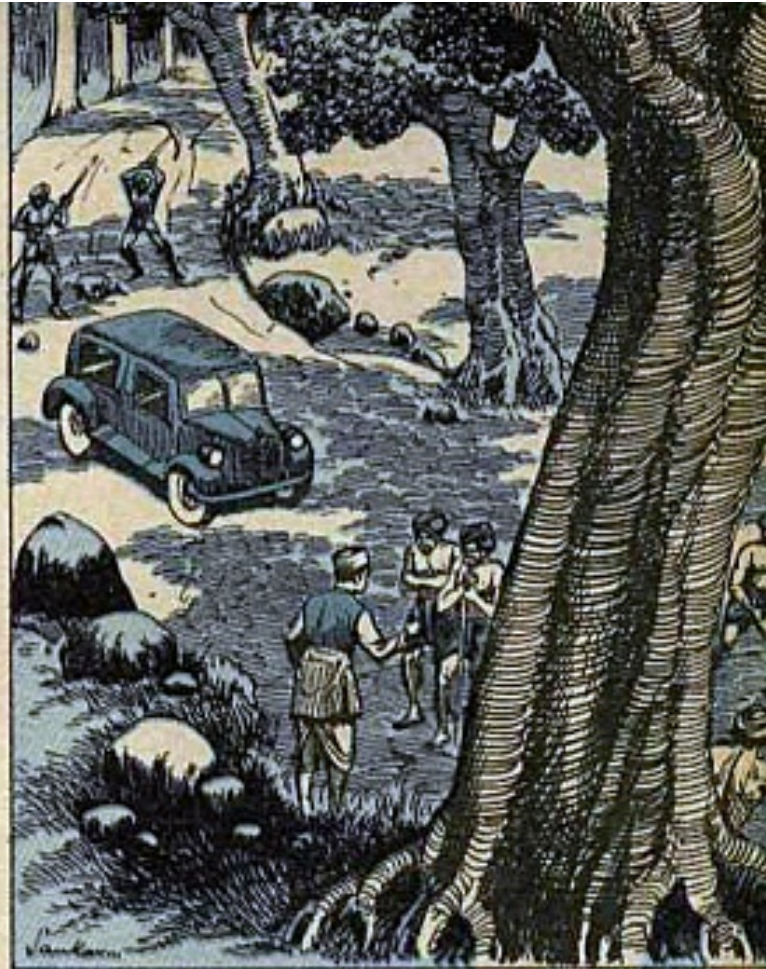
जवाहरलाल नेहरू तीन दिन ग्रामों में दौरा करके अलाहाबाद वापिस चले आये। इसके बाद, वे अक्सर गाँवों में जाते। उनको कार में आता देख, लोग उनकी कार के लिए, जगह जगह सड़कें भी बना देते। जवाहर के साथ हमेशा पोलीस, सी. आई. डी. और डिप्यूटी कलेक्टर रहा करते। उनके साथ पैदल चलते चलते उनका दम निकल जाता।

तब तक जवाहर को पाँच दस लोगों के सामने खड़े होकर, बात करने में बड़ी शर्म आती थी। ग्रामवासियों ने उनकी शर्म

हटा दी। उससे पहिले हिन्दुस्तानी में वे ठीक तरह बोल भी न पाते थे। अब वे अच्छा बोल लेते थे। वे दस के सामने या दस हज़ार के सामने बोलना सीख गये। उन्होंने तकरीरें नहीं झाड़ीं। गरीब लोगों के सामने तकरीरें झाड़ने से क्या फायदा? जो उनसे मिलने आते थे, उनसे बोलना सीख गये। लाखों आदमियों को जवाहर इस प्रकार सम्बोधित करते, जैसे वे आत्मीय हों। उनकी आवाज़ दूर तक न जा पाती थी। तब गाँवों में लाऊड़स्पीकर भी न थे। बहुत से किसान उनकी बात न सुन पाते थे और जो सुनते थे, उनको कितना समझते थे, कहना कठिन है। परन्तु जो सभाओं में आते, उनको उन पर पूर्ण विश्वास प्रेम होता था, यही मुख्य बात थी।

किसानों के आन्दोलन को, जवाहर ने स्वयं बढ़ता देखा। वे अक्सर गाँवों में, जाया करते थे। किसान अब उतने दब्बू न थे। जमीन्दारों के कारिन्दों के जुल्म कम हो गये थे। अन्याय और अत्याचार कम हो गये थे। गान्धी जी का सत्याग्रह का प्रभाव गाँवों में बढ़ता जा रहा था। कान्ग्रेस के कार्यकर्ताओं ने अपने कार्यक्रम में "किसानों के कष्ट हटाना" का नारा भी शामिल कर लिया था और इस बारे में भाषण कर रहे थे। "स्वराज्य" में सभी की आशायें प्रतिबिम्बित होती थीं।

राष्ट्रीय आन्दोलन और किसान आन्दोलन मिलकर चलने लगे। दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध था। परन्तु दोनों अलग आन्दोलन थे। गान्धी जी के प्रभाव के कारण, किसानों ने भी अहिंसामार्ग अपनाया।

[१३]

कतलूखान के अन्त:पुर में अभी नृत्य-गान चल रहे थे। कोई गा रही थी, कोई नाच रही थी और स्त्रियाँ बैठी-बैठी ताल दे रही थीं। उत्सव जोरों पर था। कतलूखान पूरी तरह नशे में था। रह रहकर "साकी साकी" कह रहा था। कभी-कभी विमला उसको जाम दे रही थी। जैसे-जैसे नवाब पीता जाता था, वैसे-वैसे उसका नशा भी बढ़ता जाता था।

विमला ने नृत्य करना प्रारम्भ किया। नवाब ने उसका नृत्य देखकर, उसको पास बुलाया। वह आकर उसके पास खड़ी हो गई। उसने उसको अपने पास बैठने के लिए कहा।

"आ रही हूँ...." कहती विमला ने झट हाथ उठाया। उसके हाथ में छुरी चमचमाने लगी।

कतलूखान जो तब चिल्लाया, तो सारा महल गूँज उठा। उसने विमला को हटाया, पर साथ स्वयं गिर भी गया। उसी समय विमला ने उसके बगल में छुरी भोंक दी। उसने अपने पति के असमय मरण का यूँ बदला ले लिया।

"शैतानी....हत्यारी...." कतलूखान ज़ोर से चिल्लाया। वहाँ जो स्त्रियाँ थीं, वे

श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

भय से चिल्लाने लगीं। विमला भी चिल्लाती चिल्लाती भागने लगी। द्वार के पास खड़े हिंजड़ों ने विमला की घबराहट सुनकर, उससे पूछा—"क्या हुआ?"

विमला, तो चालाक थी ही उसने कहा—"सत्यानाश! अन्तःपुर में मुगल आ घुसे हैं। जल्दी करो, न मालूम वे नवाब का क्या करें?" हिंजड़े इधर-उधर भागने लगे। विमला अन्तःपुर के बाहर के द्वार पर आयी, तो वहाँ पहरेदार खूब पीकर नशे में सो रहे थे। वह आसानी से, किले के दरवाज़े के पास पहुँची।

वहाँ एक पहरेदार पहरा दे रहा था। उसने विमला को देखकर पूछा—"कौन हो तुम? कहाँ जा रहे हो?"

तब तक अन्तःपुर में हो हल्ला शुरु हो गया था। सब तरफ़ से लोग आ रहे थे। विमला ने पहरेदार से कहा—"तुम यहाँ खड़े-खड़े क्या कर रहे हो? क्या वह शोर तुम्हें नहीं सुनाई दे रहा है? जाओ, बचाओ।"

"क्यों? क्या हो गया है?"

"किले में मुगल आ गये हैं। नवाब की जान बचाओ।"

जो पहरेदार किले के फाटक के पास पहरा दे रहा था, वह अन्दर भागा, और विमला निश्चिन्त हो बाहर चली गई। जब वह फाटक से कुछ दूर गई, तो उसको एक पेड़ के नीचे कोई बैठा हुआ दिखाई दिया। उसने अभिरामस्वामी को पहिचान लिया।

उसने विमला को देखकर कहा—"मैं बड़ा घबरा गया था। किले में वह शोर क्या है?"

"कुछ नहीं, मैंने अपने वैधव्य का बदला ले लिया है। अब यहाँ नहीं

रहना चाहिए। जल्दी आश्रम चलें। वहीं सब बता दूँगी। तिलोत्तमा आश्रम में पहुँच गई है न?" विमला ने पूछा।

"तिलोत्तमा आस्मानी के साथ आगे जा रही है। जल्दी ही मिल जायेगी।"

दोनों तेज़ चलते-चलते आश्रम में पहुँचे। उनसे कुछ देर पहिले ही तिलोत्तमा और आस्मानी वहाँ पहुँचे थे।

"ईश्वर की कृपा से तुम सब दुष्टों के हाथों से निकल गये हो। अब तुम यहाँ एक क्षण भी न रहो। मुसलमानों ने हमें देख लिया, तो वे हमको ज़िन्दा न छोड़ेंगे। आज रात को ही हमें यहाँ से जाना होगा।" अभिरामस्वामी ने कहा।

विमला के नवाब को छुरा भोंकने के थोड़ी देर बाद, एक कर्मचारी घबराता, जगतसिंह के पास कैद में आया। उसने कहा—" युवराज! नवाब अब और तब की हालत में हैं। आपको बुला रहे हैं। जल्दी आइये।"

जगतसिंह ने चकित होकर पूछा—क्यों? क्या हो गया है?"

"कोई शत्रु अन्तःपुर में आया और उसने नवाब को छुरा भोंक दिया और

चम्पत हो गया। वे मरे तो नहीं है, पर मौत के नज़दीक हैं। जल्दी न गये, तो शायद देरी हो जाये।" कर्मचारी ने कहा।

जगतसिंह तुरत गया और उसने मरते कतलखान को देखा। उस्मान, अयाशा, नवाब की सन्तान, पत्नियाँ, रखैलें, मन्त्री आदि, नवाब के चारों ओर खड़े थे। उनमें से कई ज़ोर से रो रहे थे। परन्तु अयाशा अपने पिता के सिर को गोदी में रखकर, आँसू बहा रही थी। जगतसिंह आ रहा था कि ख्वाजा ईसा नाम का

मन्त्री उसका हाथ पकड़कर, नवाब के पास ले गया। उसने ज़ोर से कहा—"युवराज जगतसिंह आये हैं।"

कतलूखान ने हीन स्वर में कहा—"मैं शत्रु हूँ। मर रहा हूँ। अब मुझ में दुश्मनी नहीं है।"

"मुझ में भी नहीं है।" जगतसिंह ने कहा।

"बच्चे छोटे हैं। युद्ध नहीं, सुलह...." नवाब ने कहा। जब उसने प्यास कहा, तो अयाशा ने उसके मुख में शरबत डाला। नवाब ने जगतसिंह की ओर देखकर कुछ कहा। जब जगतसिंह ने कुछ न कहा, तो नवाब ने पूछा—"मंजूर है न?"

"यदि पठान बादशाह के अधिकार को स्वीकार कर लें, तो मैं सन्धि के लिए प्रयत्न करूँगा।" जगतसिंह ने कहा।

नवाब ने अस्पष्ट स्वर में कहा—"उड़ीसा।"

"यदि मेरा प्रयत्न सफल रहा, तो आपकी सन्तान को उड़ीसा मिल जायेगा।" जगतसिंह ने कहा।

नवाब यद्यपि मौत के चुंगल में था, तो भी उसका मुँह खिल-सा उठा। "तुम्हें

आजादी....खुदा, तुम्हारा भला हो...." जगतसिंह जा रहा था कि अयाशा ने झुककर पिता के कान में कुछ कहा। नवाब का ईशारा पाकर, ख्वाजा ईसा उसके पीछे गया। "शायद नवाब आप से कुछ और कहना चाहते हैं।" वह जगतसिंह को बुला लाया।

पास बैठे, जगतसिंह से नवाब ने कहा—"कान में" यह सोच कि वह कोई भेद बतलानेवाला था जगतसिंह ने आगे कान बढ़ाया। वह रह रहकर "प्यास" चिल्लाता। धीमे धीमे उसने कहा—"मैंने तिलोत्तमा को बे सहारा, अनाथ कर दिया है। वह निष्कलंक है...." वह अयाशा का नाम लेता मर गया।

जगतसिंह कैद से छोड़ दिया गया। वह अपने पिता की छावनी में गया। उसने मुगलों और पठानों में सन्धि करवा दी। उड़ीसा में उनको आजादी से राज्य करने दिया गया। पर यह शर्त रही कि वे बादशाह का अधिकार स्वीकार करेंगे। सन्धि के अनुसार दोनों तरफ के लोगों ने एक दूसरे को हरजाना दिया। पर यह सब खतम होने के लिए कुछ समय लगा।
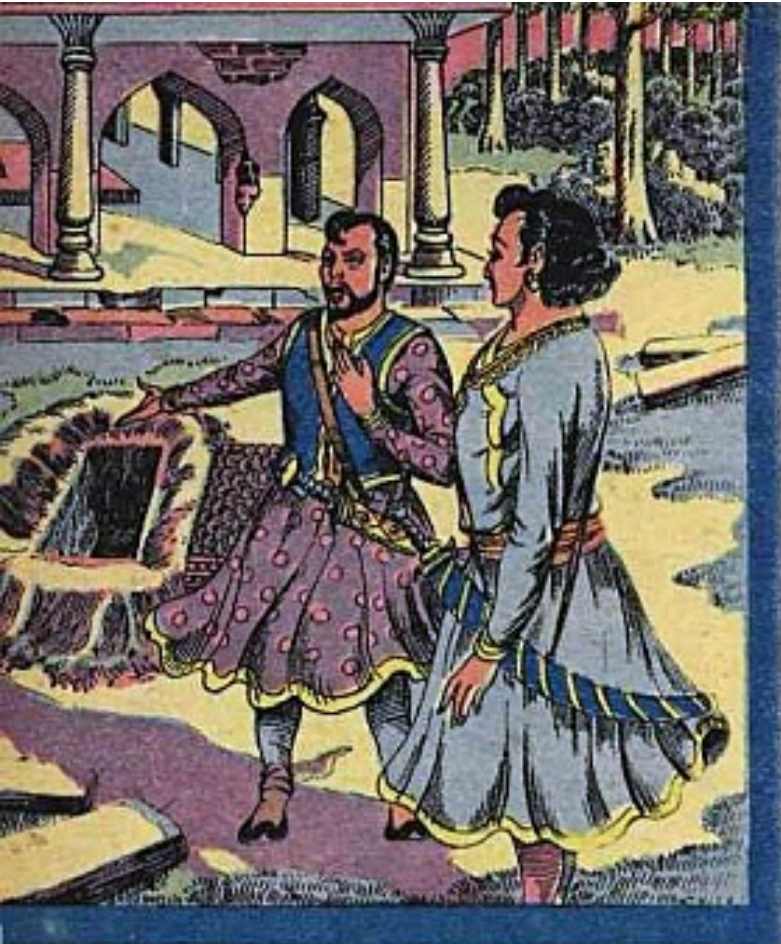
मुगल सेनायें डेरे-वेरे लेकर, पटना की ओर कूच करने को तैयार होने लगीं। एक दिन दुपहर को जगतसिंह, सपरिवार, नवाब के महल में गया। वह उस्मान और ख्वाजा ईसा से विदा लेकर, अयाशा से भी विदा लेने के लिए उसके कमरे के पास गया। हिंजड़े से कहलवाया कि वह उसे देखना चाहता था।

"युवराज, माफ़ करो। मैं अब तुमसे नहीं मिल सकती।" हिंजड़े ने आकर, युवराज को अयाशा का जवाब दिया। जगतसिंह हताश हो, अपनी छावनी की ओर चला। किले के फाटक के पास उसे उस्मान दिखाई दिया और वह उसके साथ चलने लगा।

"सेनापति, यदि आपको कुछ चाहिए, तो हुक्म हो....." जगतसिंह ने कहा।

"आप अपने लोगों को आगे जाने दीजिये। आपसे अकेले में कुछ बातें करनी हैं।" उस्मान ने कहा।

जगतसिंह ने अपने लोगों को आगे जाने दिया और घोड़े के पीछे रह गया। उस्मान ने भी एक घोड़ा मँगवाया। दोनों घोड़ों पर सवार होकर, साथ साथ चलने लगे।

उस्मान ने घने झुरमुट में, उजड़े किले की ओर रास्ता निकाला। दोनों घोड़ों पर से उतरकर, उस किले में गये। उस किले के बीच में, एक कब्र खुदी हुई थी, पर उसमें रखने के लिए कोई लाश न थी। कब्र के पास ही एक चिता बनाई हुई थी। पर वहाँ भी कोई लाश न थी।

"यह सब क्या है? सब बड़ा अजीब मालूम होता है।" जगतसिंह ने कहा।

"यह प्रबन्ध मैंने ही करवाया है, यदि मैं मर जाऊँ, तो उस कब्र में डलवा

देना और यदि तुम मर गये, तो मैं उस चिता पर तुम्हारा दहन संस्कार करवा दूँगा।" उस्मान ने कहा।

"मानि....?"

"हम दोनों में से किसी न किसी एक को मरना है। अयाशा के प्रेम को चाहनेवाले इस संसार में दो नहीं हो सकते।" उस्मान ने कहा।

यह कहते ही उस्मान तलवार लेकर, जगतसिंह की ओर लपका। जगतसिंह ने भी मियान में से, एक तलवार निकाली। उस्मान के वारों को रोकता, आत्म रक्षा करने लगा। दोनों अच्छे योद्धा थे। पर जगतसिंह पर बहुत से घाव लग गये थे और लगातार खून बह रहा था। चूँकि उसने उस्मान के शरीर पर घाव करने का प्रयत्न नहीं किया था, इसलिए उस्मान के शरीर पर कोई घाव न था।

इस प्रकार श्रम करते करते, वह मृत्यु से न बच सकेगा, यह सोचकर जगतसिंह ने कहा—"उस्मान, अब बस करो, समझ लो कि मैं हार गया हूँ।"

उस्मान ने ज़ोर से हँसकर कहा—"मैं नहीं जानता था कि एक राजपूत

मौत से इतना डरता है। युद्ध करो। मैं तुम्हें मार दूँगा और अगर मैं ही मर गया, तो भी तुम्हें अयाशा नहीं मिलेगी?"

"मुझे अयाशा नहीं चाहिए। मैं उसे नहीं चाहता।" जगतसिंह ने कहा।

"तुम भले ही अयाशा को न चाहो, पर अयाशा तुमसे प्रेम कर रही है। युद्ध करो।" उस्मान ने तलवार घुमायी।

जगतसिंह ने तलवार दूर फेंककर, कहा—"आपत्ति के समय, तुमने मुझे प्राण दिये। मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा।" उस्मान ने गुस्से में उसके पैर पर लात

मारकर कहा—"युद्ध करने के लिए डर रहे हो? तुम भी क्या योद्धा हो!"

जगतसिंह का धीरज जाता रहा। उसे रोष आ गया। उसने नीचे गिरी तलवार उठायी और उस्मान पर हमला किया। उसकी चोट से, उस्मान के छक्के छूट गये। जगतसिंह उसकी छाती पर चढ़ बैठा। उसकी तलवार लेकर, उसका गला घोंटकर पूछा—"क्यों, लड़ाई की प्यास बुझ गयी है?"

"जब तक मेरे बदन में प्राण हैं, तब तक यह प्यास नहीं जायेगी।" उस्मान ने कहा।

"तुम्हारे प्राण लेने के लिए एक घड़ी नहीं लगेगी।"

"मार दो। नहीं, तो तुम्हें मारने की कोशिश नहीं छोड़ूँगा।"

"जीते रहो। मैं तुमसे नहीं डरता, कभी तुमने मेरे प्राण बचाये थे। अब मैं तुम्हारे प्राण बचाता हूँ।"

जगतसिंह ने उस्मान के दोनों हाथ अपने पैरों से दबाये रखे, उसके हथियार लिये। फिर उसे छोड़ दिया। "जाओ। तुमने मुझे लात मारी थी, नहीं तो मैं तुम्हारा इतना अपमान न करता।"

उस्मान घोड़े पर सवार होकर, अपने किले की ओर चल दिया।

जगतसिंह जब बावड़ी में अपने घाव धो धाकर, घोड़े के पास पहुँचा, तो घोड़े के गले में एक कागज़ बँधा हुआ था। चूँकि उस पर लिखा था "दो दिन तक न पढ़ो" उसने उसको अपने कवच में रख लिया और छावनी की ओर चल पड़ा।

[अगले अंक में समाप्त]
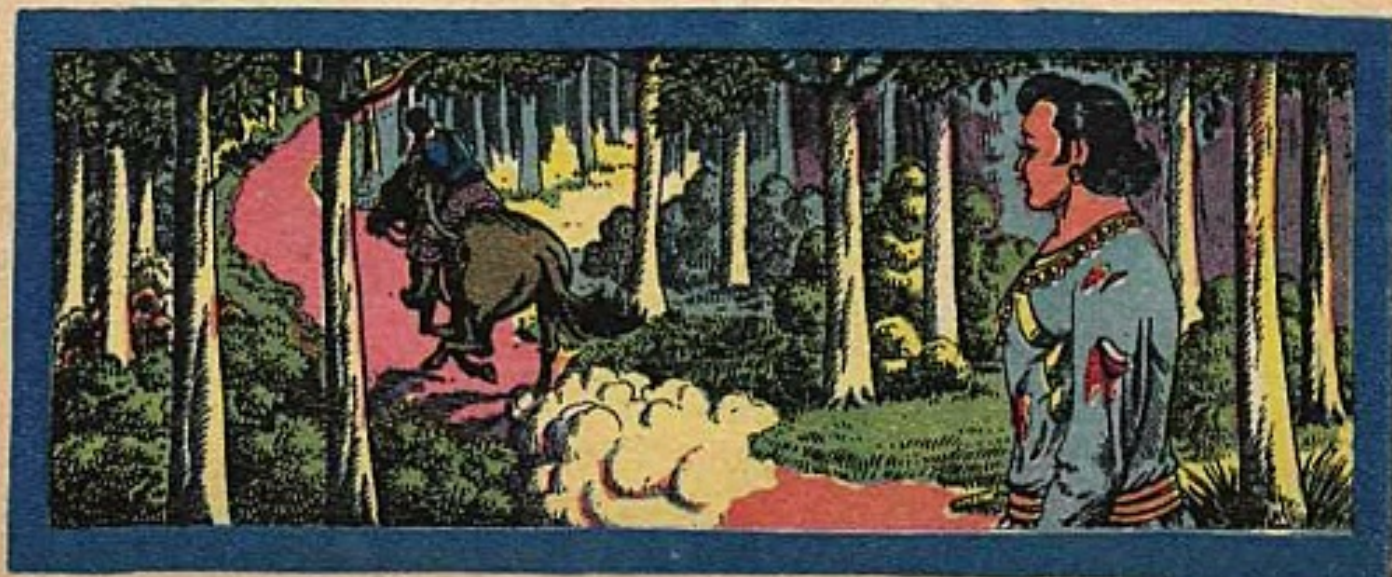
नरक का भय

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतारकर कन्धे पर डाल हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, जो तुम कर रहे हो, कहीं इसके परिणामस्वरूप, तुम्हें नरक न मिले, इस बारे में तुमने सोचा? मनुष्य के लिए नरक के भय से कोई अधिक भय नहीं है। यह दिखाने के लिए तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। सुनो, ताकि तुम्हें थकान न मालूम हो।" उसने यूँ कहानी सुनानी शुरु की।

कभी सिंहल द्वीप में सिंह विक्रम नाम का एक बड़ा चोर रहा करता था। जब से उसने होश सम्भाला था, तब से वह दूसरों की चीज़ें चुराकर एक धनी की तरह जीवन बिता रहा था। वह बूढ़ा होने लगा।

वेताल कथाएँ

तब उसे एक चिन्ता हुई। उसने सोचा—"इस जीवन में तो बच गया हूँ, पर मरकर ज़रूर नरक जाऊँगा। मैंने इस जन्म में कोई पुण्य नहीं किया है, तब कौन देवता मुझे नरक से बचा सकेगा? भगवान के दिक्पालक देवता भक्त होते हैं। इसलिए शिव, विष्णु देवताओं की न सुनकर मेरी नहीं सुनेंगे। हर किसी के पाप पुण्य का जो हिसाब रखता है, वह चित्रगुप्त ही मेरी कुछ मदद कर सकता है।"
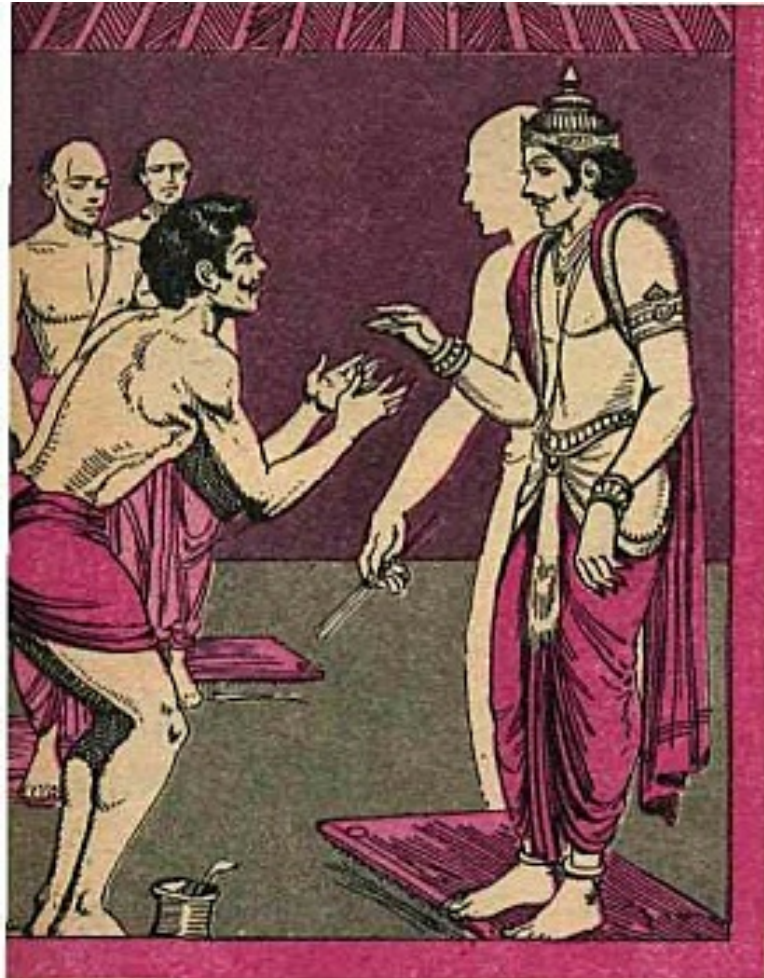
यह सोचकर सिंह विक्रम भक्तिपूर्वक श्रद्धा से चित्रगुप्त की पूजा करने लगा। चित्रगुप्त को रिझाने के लिए ब्राह्मणों का सन्तर्पण करने लगा। भोजन करके ब्राह्मण उसे आशीर्वाद देते—"चित्रगुप्त का अनुग्रह तुम्हें प्राप्त हो।"

एक दिन चित्रगुप्त ब्राह्मण का वेष धारण करके सिंहविक्रम के घर अतिथि बनकर आया। चोर ने उसका स्वागत किया। सत्कार किया। अच्छी तरह खिलाया पिलाया। दक्षिणा देकर कहा—"मुझे आशीर्वाद दो कि चित्रगुप्त का अनुग्रह मुझे मिले।"

चित्रगुप्त ने उससे पूछा—"यह भी क्या आशीर्वाद है? शिव केशव को छोड़कर क्यों चित्रगुप्त की आराधना कर रहे हो?"

"उस सब से तुम्हारा क्या वास्ता? मुझे सिवाय चित्रगुप्त के अनुग्रह के किसी और देवता का अनुग्रह नहीं चाहिए।" चोर ने कहा। यह सुन चित्रगुप्त सन्तुष्ट हुआ। अपने निज रूप में प्रत्यक्ष होकर उसने कहा—"तुम्हारी भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूँ। कहो क्या चाहते हो?"

सिंह विक्रम ने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा—"स्वामी! मुझे ऐसा वर दीजिए कि मैं मरूँ न?"

"यह तो असम्भव है। फिर भी तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। एक बार जब यम, श्वेत मुनि के प्राण लेने आया, तो उसने क्रुद्ध होकर यम को भस्म कर दिया। शिव ने यम को फिर जिला दिया और उसे आज्ञा दी कि श्वेत मुनि के स्थान पर वह किसी को न छुए। समुद्र के पार, तरंगिणी नदी के किनारे श्वेत मुनि एक आश्रम बनाकर रह रहा है। उस तपोवन में न यम आता है, न यमकिंकर ही। मैं तुम्हें वहाँ छोड़ दूँगा। परन्तु तुम उस नदी को पार करके इस तरफ़ न आना।" कहकर चित्रगुप्त सिंह विक्रम को तरंगिणी नदी के उस पार श्वेतमुनि के आश्रम में छोड़कर अदृश्य हो गया।

थोड़े दिनों बाद यम, चोर के प्राण लेने के लिए तरंगिणी नदी के इस पार आया। वह नदी पार करके उस पार जा नहीं सकता था। इसलिए यम ने अपनी माया के प्रभाव से एक दिव्य स्त्री बनायी और उसे श्वेतमुनि के आश्रम में भेजा।

उस स्त्री को देखकर चोर मुग्ध हो गया। फिर वह अपने लोगों को देखने के लिए नदी पार करके फिर आ जायेगी,

यह कहकर निकल पड़ी। चोर ने उसको नदी तक पहुँचाया और जब वह नदी पार कर रही थी तो वह देखता खड़ा रहा।

आधी नदी पार करने के बाद उसने यूँ दिखाया, जैसे धारा में बही जा रही हो। "अरे, अरे डूबी जा रही हूँ। बचाओ, अरे, देख क्या रहे हो? बचाओ।" वह चिल्लायी।

उसका चिल्लाना सुनकर चोर नदी में कूदा और जिस तरफ़ वह बही जा रही थी, उस तरफ़ तैरने लगा। जब वह उसके पास पहुँचा वह पहले पार लग गई थी। चोर के इस किनारे पैर रखते ही यम ने उसके गले में फन्दा डाल दिया और उसको अपने लोक में ले गया।

इस तरह सिंह विक्रम मौत से न बच सका। फिर भी चित्रगुप्त ने उसको एक और सलाह कान में दी। "यम, तुमसे पूछेंगे कि पहिले स्वर्ग चाहते हो, या नरक? कहना कि स्वर्ग ही चाहता हूँ, तब तुम स्वर्ग भेज दिये जाओगे। वहाँ तुम स्वर्ग के सुख का आनन्द लेते न रहना, पर तपस्या करना ताकि तुम्हारे सब पाप धुल जायें।"

सिंह विक्रम ने यही करने का निश्चय किया।

फिर यम ने चित्रगुप्त को बुलाकर कहा—"क्या इस चोर के हिसाब में कुछ पुण्य भी है?"

"है, ब्राह्मणों का सन्तर्पण कराने के कारण यह एक दिन स्वर्ग में रहने का अधिकारी है।" चित्रगुप्त ने कहा।

"क्यों, तुम पहिले स्वर्ग चाहते हो या नरक?" यम ने चोर से पूछा।

"जी, मैं पहिले स्वर्ग ही जाऊँगा।" चोर ने कहा।

सिंह विक्रम को स्वर्ग भेजा गया। वहाँ उसने सुख अनुभव न किया। शिव की घोर तपस्या करने लगा। उसने इस प्रकार अपने सब पाप नष्ट कर दिये। उसका स्वर्गवास जब पूरा हो गया, तो यम के किंकर उसको लिवा लेने के लिए आये। पर उसमें इतना ओज आ गया था कि उनमें इतनी भी शक्ति न रही कि वे उसके पास जा सकें। वे वापिस चले गये।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा—"राजा, मुझे एक सन्देह है। सिंह विक्रम जब श्वेतमुनि के आश्रम में था, तब यदि वह यम की भेजी हुई माया स्त्री पर मुग्ध न होता, तो वह मृत्यु को जीत लेता। घोर तपस्या करने की आवश्यकता ही न होती। एक क्षुद्र स्त्री के सुख के लिए क्यों उस चोर ने अपने को स्वर्ग के सुखों से वंचित किया? यदि तुमने इस सन्देह का जान बूझकर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"सुख की भ्रान्ति ही नरक के भय का मूल कारण है। इस बारे में हीन सुख और उत्तम सुख में कोई भेद नहीं है। सिंह विक्रम श्वेतमुनि के आश्रम में रहता माया स्त्री की भ्रान्ति में मौत ही मोल ले बैठा। नरक के पास आया। अगर वैसी ही भ्रान्ति उसको स्वर्ग के सुखों के बारे में भी होती, तो उसे अवश्य नरक की प्राप्ति होती। जब उसमें सुख की भ्रान्ति जाती रही तो उसमें नरक का भय भी जाता रहा।

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा।

देवस्मिता

ताम्रलिप्ति नगर में धनदत्त नाम का महा धनी व्यापारी रहा करता था। उसके बहुत दिनों बाद गुहसेन नाम का लड़का हुआ। गुहसेन जब सयाना हो गया, तो धनदत्त उसके विवाह के लिए लड़की खोजने लगा। उसको आसपास कहीं कोई ठीक लड़की न दिखाई दी। वह व्यापार के बहाने अपने लड़के को साथ लेकर और द्वीपों में भी गया।

आखिर एक द्वीप में उसको एक कन्या दिखाई दी, जो उसको जंची। उस लड़की का नाम देवस्मिता था। उसका पिता धर्मगुप्त नाम का वैश्य था। धनदत्त ने धर्मगुप्त से कहा—"तुम अपनी लड़की का विवाह हमारे गुहसेन से करो।" परन्तु धर्मगुप्त अपनी लड़की पर जान देता था और ताम्रलिप्ति न मालूम कितनी दूर था। वह अपनी लड़की को इतनी दूर नहीं भेजना चाहता था। इसलिए उसने धनदत्त की इच्छा को स्वीकार नहीं किया।

परन्तु देवस्मिता ने गुहसेन को देखा। उसने उसके गुणों को परखा। उसे वह प्रेम करने लगी। वह उसके लिए माँ बाप को छोड़ने तक को तैयार हो गई। धनदत्त और गुहसेन जब नाव में सवार होकर जाने ही वाले थे, देवस्मिता ने माँ बाप के बिना जाने घर छोड़ दिया और वह भी नौका में जा बैठी। इसके लिए उसने अपनी सहेली द्वारा पहिले ही इन्तज़ाम करवा लिया था।

ताम्रलिप्ति पहुँचते ही धनदत्त ने बड़े वैभव के साथ देवस्मिता का अपने लड़के

के साथ विवाह कर दिया। वे दोनों सुख से जीवन व्यतीत करने लगे।

इस तरह कुछ दिन गुज़र जाने के बाद धनगुप्त गुज़र गया। व्यापार का भार गुहसेन पर पड़ा। उसके बन्धुओं ने दबाव डाला कि उसे व्यापार पर कटाहा द्वीप जाना होगा। देवस्मिता ने उसको जाने न दिया। उसको डर था कि यदि उसका पति बहुत दिन दूर के द्वीपों में रहा तो उसका मन किसी और स्त्री पर लग सकता था। गुहसेन को न सूझा कि क्या करे, यदि उसने कुल का कर्तव्य न किया तो बन्धुओं की दृष्टि में वह असमर्थ जाना जायेगा, यदि व्यापार पर चला जाता है, तो पत्नी को कष्ट होगा।

जब उसे इस दुविधा से निकलने का रास्ता न सूझा तो उसने सारा भार भगवान पर डाल दिया। वह शिवालय में गया। भोजन छोड़कर उसने व्रत किया। देवस्मिता ने भी पति के साथ व्रत किया। आखिर उन दोनों को शिव स्वप्न में दिखाई दिया। उसने दोनों को एक एक कमल दिया। "इन्हें तुम अपने पास रखो। यदि तुममें से कोई मार्गच्युत हुआ, तो कमल मुरझा

जायेगा। नहीं, तो ये कमल नहीं मुरझायेंगे।" जब वे सोकर उठे, तो सचमुच दोनों के हाथ में एक एक कमल था। अब देवस्मिता को पति की यात्रा रोकने की कोई आवश्यकता न थी। उसके चाल-चलन की गवाही के रूप में उसके पास कमल था ही। गुहसेन रत्नों का व्यापार करने के लिए कटाहा द्वीप चला गया और देवस्मिता अपने कमल को देखती देखती घर में ही रह गई।

कटाहा द्वीप में गुहसेन का पाँच छः वैश्य युवकों से परिचय हुआ। उन्होंने

वह प्रयत्न करेगी कि देवस्मिता उन चारों से प्रेम करे।

वह देवस्मिता के पास गई। उसे इधर उधर की बातें सुनाईं। आखिर उसने वह काम भी बताया, जिस पर वह आयी थी। देह धर्म का पालन न करना पाप है। पति के दूर देश जाने पर, पत्नी पर पुरुष से प्रेम कर सकती है।" उस स्त्री ने देवस्मिता से कहा।

देवस्मिता ने उसके साहस के लिए और उसको भेजनेवालों के साहस के लिए उन सब को उचित दण्ड देने की सोची। उसने यूँ दिखाया, जैसे वह सन्यासिनी की बात मान गई हो। उसने उनको रात के समय एक एक करके आने के लिए कहा। सन्यासिनी के जाने के बाद, देवस्मिता ने कुत्ते के पैर की निशानवाली एक मुद्रा बनवायी। उसने अपनी सेविकाओं में से एक को सुन्दर साड़ी पहिनवायी और उससे कहा कि वह ऐसा व्यवहार करे, जैसे वह स्वयं हो उसने और सेविकाओं को भी बताया कि उनको क्या क्या करना था।

उस दिन रात को पहिले युवक के आते ही सेविकाओं ने उसका खूब स्वागत

गुहसेन के पास एक लाल कमल देखा, जो कभी कुम्हलाता न था, उसका क्या रहस्य था, गुहसेन ने उन्हें नहीं बताया था। जैसे भी हो, उसका रहस्य जानने के लिए वे उसको अतिथि बनाकर ले गये। उसे खूब पिलाया और उससे कमल का रहस्य जान लिया। उनको उसकी पत्नी का इतना साध्वी होना पसन्द न था। उसके सतीत्व को भ्रष्ट करने के लिए वे चारों युवक यात्रा करके ताम्रलिप्ति पहुँचे। वहाँ उनको एक बौद्ध सन्यासिनी दिखाई दी। उसने कहा कि

किया। उन्हें बेहोशी की दवा वाली शराब पिलायी। लोहे की मुद्रा गरम करके उनके माथे पर दगवादी और बेहोशी की हालत में उसको उठाकर कूड़े कर्कट के ढ़ेर पर फेंक दिया।

अगले दिन जब उसे होश आया, जो कुछ हुआ था, वह समझ गया। माथे पर तौलिया डालकर वह वापिस चला गया। उसने औरों को नहीं बताया कि वह कैसे अपमानित हुआ था, इसलिए और भी इसी तरह अपमानित हुए। इसके बाद सब फिर कटाहा द्वीप पहुँचे। बौद्ध सन्यासिनी भी यह सोचकर कि उसने चार युवक भेजे थे, इसलिए यदि वह गई तो देवस्मिता ईनाम देगी, वह भी गई। उसके माथे पर भी दगवा दिया गया।

इस प्रकार जो उसका सतीत्व नष्ट करने आये थे, उन सब को सबक सिखाकर देवस्मिता ने जो कुछ गुज़रा था, उसे अपनी सास को बताया।

"अच्छा काम किया बेटी। पर न मालूम वे मेरे लड़के का क्या बिगाड़ें?" सास ने पूछा।

"सास जी, मैं कटाह द्वीप जाकर अपने पति की रक्षा करूँगी।" देवस्मिता ने कहा। सास इसके लिए मान गई।

देवस्मिता ने व्यापारी का वेष बनाया। अपनी सहेली से भी वही वेष धारण करने के लिए कहा। व्यापार के बहाने नाव पर सवार होकर कटाह द्वीप गई। वह, वहाँ के राजा के पास गई। उससे कहा—"महाराज, हमारे चार गुलाम हमारे देश से यहाँ भागकर आये हुए हैं। यदि आपने अपने लोगों को इकठ्ठा करवाया, तो मैं उनको पहिचान सकूँगी।"

राजा इसके लिए मान गया और उसने अपने लोगों को इकट्ठा करवाया। उनमें चारों को माथे पर कपड़ा डाले देख देवस्मिता ने कहा—"ये ही मेरे गुलाम हैं।"

यह सुनते ही वहाँ उपस्थित वैश्य प्रमुखों ने कहा—"ये तुम्हारे गुलाम कैसे बने? ये यहाँ के सेठों के लड़के हैं।"

"यदि वे मेरे गुलाम नहीं हैं, तो मेरे निशान की छाप उनके माथे पर कैसे हैं? चाहें तो आप उनके माथे पर से कपड़े हटवाकर देख लीजिए।" देवस्मिता ने कहा।

राजा ने उन चारों से माथे पर का कपड़ा हटवाया। चारों के माथों पर कुत्ते के पैर के निशान थे। वैश्य प्रमुखों को नीचा देखना पड़ा।

राजा ताड़ गया कि इसमें अवश्य कोई राज था। उसने देवस्मिता से पूछा कि सचमुच क्या हुआ था। उसने जो कुछ हुआ था, उसे कह सुनाया। सब लोग जोर से हँसे।

राजा ने उसकी प्रशंसा करके कहा—"ये सचमुच तेरे गुलाम हैं।"

राजा के यह घोषित करते ही कि वे उसके गुलाम थे वैश्य प्रमुखों ने आपस में खूब चन्दा इकट्ठा किया और उसे देवस्मिता को देकर उन युवकों को छोड़ देने के लिए कहा।

देवस्मिता ने वह धन ले लिया। वहाँ के प्रमुखों का आदर प्राप्त करके, पति के साथ ताम्रलिप्ति वापिस चली आयी। उसके बाद पति पत्नी एक दूसरे को बिना छोड़े सुख से जीने लगे।

चार मित्र

कदम्ब देश के एक राजा के गुणचन्द्र नाम का लड़का था। उसके साथ उसकी ही उम्र के तीन और लड़कों को लेकर, उसका विद्याभ्यास किया गया। बाकी तीन थे, मन्त्री का लड़का धीमन्त, व्यापारी सेठी का लड़का, मणिगुप्त और सेनापति का लड़का, जयम्भर। ये सब मिलकर बड़े हुए। साथ पढ़े। विद्याभ्यास पूरा करके, गुणचन्द्र एक वर्ष देश में पर्यटन के लिए जब निकला, बाकी तीन भी उसके साथ गये।

ये चारों मित्र जब घूमते घूमते, मालव देश पहुँचे, तो गुणचन्द्र ने मालव देश की राजकुमारी, शशिरेखा को देखा और उसने उससे विवाह करने की सोची, शशिरेखा ने भी उससे विवाह करना चाहा। पर उसने एक नियम बनाया। जैसे गुणचन्द्र के तीन मित्र थे, वैसे उसकी भी तीन सखियाँ थीं। उनमें से एक मन्त्री की लड़की थी, दूसरी उस देश के जौहरी की लड़की। तीसरी सेनापति की लड़की। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वे एक साथ विवाह करेंगी और एक जगह गृहस्थी करेंगी।

सौभाग्यवश क्योंकि गुणचन्द्र के भी तीन साथी थे, इसलिए चारों कन्याओं को चार मित्रों के साथ विवाह करने का एक ही समय में मौका मिल गया था। गुणचन्द्र के मित्र शशिरेखा की सखियों से विवाह करने के लिए मान गये। चारों का विधि पूर्वक विवाह हो गया। चारों अपनी अपनी पत्नियों के साथ कदम्ब देश की राजधानी वापिस चले गये।

कुछ समय बीता। गुणचन्द्र का बूढ़ा पिता गुज़र गया। गुणचन्द्र ने राज्याभिषेक के बाद, अपने मित्रों को ही, मन्त्री का पद, कोशाधिपति का पद, सेनापति का पद दिया। उनकी पत्नियाँ गर्भवती हुई। इससे उन सब को अत्यन्त आनन्द हुआ।

एक दिन शाम को, राजमहल की छत पर जब चारों मित्र अपनी पत्नियों के साथ बतिया रहे थे, तो एक गरुढ़ पक्षी उनके पास मँड़राया और मनुष्यों की भाषा में, गुणचन्द्र को सम्बोधित करके उसने यूँ कहा।

"राजा, जल्दी ही ये स्त्रियाँ मातायें बनने जा रही हैं। पर आपको मालूम करना होगा कि इनको पक्षी शाप है। ये चारों जब छोटी थीं, तो वन-विहार करते समय, इन्होंने छोटे छोटे पक्षियों को पत्थरों से मारा था। उनके पंख वगैरह उखाड़कर, उनको सताया था। पक्षियों ने जाकर जब अपने राजा गरुत्मन्त से इनकी शिकायत की, तो उसने इन चारों को शाप दिया। शाप यह था कि जब ये विवाह करके, सन्तान पैदा करेंगी और जब सन्तान को देखकर खुश होंगी, तब वे बच्चे मर जायेंगे। यह गर्भ शोक उनको बारह साल तक रहेगा। यह आपके लिए पहिले जानना अच्छा होगा, यह सोचकर मैंने बताया है।"

यह सुनते ही, सभी बड़े दुःखी हुए। आपस में, बहुत देर सोचने विचारने के बाद, उन्होंने एक निश्चय किया। वह निश्चय यह था, जब चारों का प्रसव समय समीप आ जाये, दायियों से प्रसव कराकर, बच्चों के पैदा होते ही, उनको राज्य की सीमाओं से बाहर ले जाकर, उनके भरण-पोषण की वहाँ व्यवस्था की जाये। पैदा होनेवाले बच्चों के पालन-पोषण के लिए

सीमा के पार के विभाण्डक नामक गुरु को नियुक्त किया। बच्चों के बारह वर्ष तक, सुखपूर्वक जीने के लिए उन्होंने सारी व्यवस्था कर दी।

अलग कमरों में, चारों स्त्रियों ने, एक ही दिन, चार बच्चों को जन्म दिया और दायियों ने माताओं को, बच्चों को देखने नहीं दिया। उनको बाहर ले गये। और सैनिकों द्वारा उनको विभाण्डक के पास पहुँचा दिया। वे बच्चे वहीं बड़े हुए। विभाण्डक के पास ही वे पढ़ने लिखने लगे।

बारह वर्ष बीत गये। शशिरेखा और उनकी सखियों पर, पक्षियों का शाप जाता रहा। उन्होंने तब तक न अपने बच्चों को देखा था, न उन्हें दुलारा, पुचकारा ही था। बारह वर्ष वे अपने बच्चों के लिए एक तरह से छटपटाते रहे। शाप समाप्त हो गया था, इसलिए वे विभाण्डक के यहाँ से अपने बच्चों को बुलवा सकते थे।

परन्तु अब एक और समस्या आ गई थी। उन चारों में कौन किसका लड़का है, यह कैसे मालूम किया जाय? न उनको माता पिता ही पहिचानते थे न विभाण्डक ही जानता था। बच्चे भी न जानते थे कि उनके माँ बाप कौन थे। यदि वे बच्चे किस किस के थे, यह न पता लगाया गया, तो बहुत-सी दिक्कतें थीं। जब यह न मालूम हो सकेगा कि कौन राजा होने जा रहा है, कौन मन्त्री, कौन कोशाधिकारी, कौन सेनापति—वे सब यों ही समझे जाते।
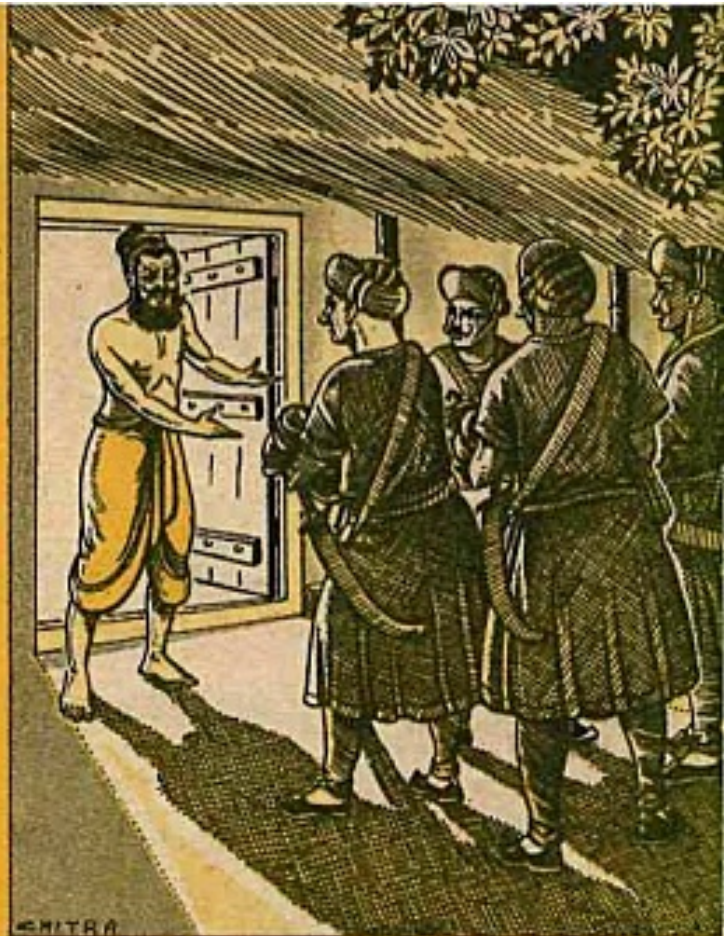
समस्या को सुलझाने के लिए बूढ़े मन्त्री ने निश्चय किया। उसने चार बूढ़ों को, जो कुछ उनको बताना था, उनको बताकर विभाण्डक के गुरुकुल को भेजा। उन्होंने विभाण्डक से जाकर कहा कि

वे एक एक लड़के को उनमें से एक एक ले जायेगा।

विभाण्डक ने उन लड़कों का नामकरण भी न किया था। वह उनको एक दल, द्विदल, त्रिदल और चतुर्थ दल के नाम से पुकारा करता था। अब उसने उन लड़कों को अलग अलग करके बुलाकर कहा—"बेटा, अब तुम्हें घर ले जाने के लिए तुम्हारे बाबा आये हैं।"

उन चार लड़कों को इसका बड़ा दुःख रहा कि इतने दिनों तक मिल जुलकर रहने के बाद, वे अलग हो रहे थे। उनके गुरु ने नहीं बताया था कि वे चारों एक ही जगह जा रहे थे। वे एक दूसरे से विदा लेकर, उनके लिए जो बूढ़े आये थे, उनके साथ अलग अलग रास्तों पर चले गये।

एक दल, जब बूढ़े के साथ जा रहा था, तो रास्ते में उनको एक चोर ने रोका। उसने कहा—"जो कुछ तुम्हारे पास है, वह दे दो, वरना मार दूँगा।"

एक दल झट उस पर झपटा। चोर के हाथ से लाठी लेकर, उससे उसने उसको खूब पीटा। चोर गिर गया। एक दल ने दूर दिखाई देनेवाले मनुष्यों को बुलाकर कहा—"इस आदमी के हाथ पैर बाँधकर हमारे साथ लाओ। राजा से कहकर तुमको अच्छा ईनाम दिलाऊँगा।" उन्होंने वैसा ही किया।

द्विदल को भी रास्ते में एक चोर मिला। उसने भी जो कुछ उनके पास था उसको देने के लिए कहा। द्विदल ने चोर से कहा—"हमारे पास क्या है? केवल बदन पर ये कपड़े ही हैं। चाहते हो तो ले जाओ।" इस बीच बूढ़े ने दूर के लोगों को बुलाया—"आओ आओ, चोर चोर पकड़ो।"

चोर उनके सामने गिड़गिड़ाया। उसने हाथ जोड़कर कहा—"इस बार मुझे छोड़ दीजिये।"

"तो कभी ऐसे काम फिर न करना। जाओ। ईमानदारी से जीओ।" द्विदल ने कहा। चोर चला गया।

इस बीच लोगों ने आकर पूछा—"चोर कहाँ है ?"

"बूढ़ा यूँहि घबराहट में चिल्लाया था। यहाँ कोई चोर वोर नहीं है।" द्विदल ने कहा।

त्रिदल, जिस रास्ते पर एक और वृद्ध के साथ जा रहा था, वहाँ भी एक चोर आया। त्रिदल ने चोर को कुछ दूरी पर देखकर कहा—"चोर आ रहा है, बाबा भाग जाओ।" कहकर वह स्वयं सिर पर पैर रखकर भागने लगा। चोर यह देख मन ही मन हँसा और चला गया।

चतुर्दल को भी चोर ने रोका। चतुर्दल उससे भिड़ पड़ा। उसे मजबूर करके, उसके हाथ पैर बाँध दिये। उसकी तल्वार से ही, उसने उसका सिर काट देना चाहा। कहीं से कुछ राहगीर उस तरफ़ आये। उन्होंने कहा—"बेटा, इसे न मारो, इस राज्य में, जो कोई हत्या करता है, उसको मृत्यु की सज़ा दी जाती है।"

"मुझे मार दो, कोई बात नहीं। परन्तु इस तरह के काँटों को जीने नहीं दिया जाना चाहिए।" चतुर्दल ने कहा। बूढ़े और और लोगों ने बड़ा जोर लगाकर, चतुर्दल को रोका। उसके हाथ की तलवार ले ली, नहीं तो चोर का सिर वह काट देता।

सच कहा जाये, तो ये असली चोर न थे। इन चोरों और पास जाते हुए लोगों को वृद्ध मन्त्री ने ही नियुक्त किया था

और इस तरह उसने चारों बच्चों की परीक्षा ली थी। बूढ़े जब उन बच्चों को राजधानी ले गये, तो अन्धेरा हो गया था, एक एक बूढ़ा अपने साथ लाये हुए लड़के को लेकर, एक खाली निर्जन घर में गया।

एक दल को साथ लानेवाले बूढ़ ने एक कमरे में प्रवेश करके कहा—"देखो, कमरे में क्या है।"

"गाढ़ा अन्धकार है। बिना रोशनी के कैसे मालूम होगा कि क्या है?" एकदल ने कहा।

द्विदल ने उसी प्रश्न का उत्तर दिया—"इस कमरे में भय है।" त्रिदल ने कमरे में जाकर उसी प्रश्न के उत्तर में कहा—"शायद यहाँ कोई खजाना है।"

चतुर्दल ने सारा कमरा देखकर कहा—"इसमें कुछ नहीं है।"

अगले दिन सवेरे चारों लड़कों को वृद्ध राजसभा में ले गये। लड़के जब एक जगह पहुँचकर एक दूसरे को देखकर बड़े खुश हुए।

वृद्ध मन्त्री ने गुणचन्द्र से कहा—"इन सब की परीक्षा ले ली है। इनमें एकदल आपका लड़का है। उसमें क्षत्रिय के उपयुक्त सभी गुण हैं। राजा के सभी लक्षण हैं। द्विदल तुम्हारे मन्त्री का लड़का है, मेरा पोता है। उसमें ब्राह्मण के उपयुक्त क्षमा और समयस्फूर्ति है। त्रिदल होशियार धन की चिन्ता करनेवाले वैश्य का लड़का है। चतुर्दल सेनापति का लड़का है, साहसी और त्यागशील है।"

वृद्ध मन्त्री का निर्णय माँ-बाप, सभी को जँचा। प्रत्येक ने अपना अपना लड़का स्वीकार किया और सुख से रहने लगे।

सपनों का व्यापार

एक गाँव में एक गरीब स्त्री के तीन लड़के थे। उसका पति गृहस्थी निभा न सका। यह बहाना करके कि वह पैसा कमाकर आयेगा, कहीं चला गया और वापिस घर न आया। इस कारण गृहस्थी का भार इस स्त्री पर पड़ा। वह जैसे तैसे अपने बच्चों को पालती रही। कुछ समय बाद बड़े दो लड़के कुछ काम धाम करने लगे। बड़ा लड़का पानी ढोकर पाँच दस रुपये कमाने लगा। दूसरा भेड़ों को चराया करता। तीसरा ब्रह्मन्ना किसी काम का न था। ब्रह्मन्ना को सिवाय खाने पीने और सोने के कोई और काम करता न देख, एक दिन उसकी माँ ने उससे पूछा— "हमेशा यूँ सोते रहने से पेट कैसे भरेगा? क्यों नहीं, कहीं जाकर काम खोजते?"

"सोने पर माँ बड़े अच्छे अच्छे सपने आते हैं। मैं उन्हें छोड़ना नहीं चाहता।" कहकर, ब्रह्मन्ना ने अपने सपनों के बारे में अपनी माँ को बताया। माँ ने उस पर खिझकर कहा—"छी, पगला कहीं का.... क्या सपनों से कहीं रुपया मिलता है?"

इस बात के अगले दिन ब्रह्मन्ना ने कहा—"माँ, मैं जाकर पैसा कमाकर आऊँगा।"

माँ ने सन्तुष्ट होकर पूछा—"कहाँ जाओगे? क्या काम करोगे?"

"रात मुझे एक सपना आया था। उसमें एक ज़मीन्दार मेरे सपनों को खरीद रहा था। मैं उस ज़मीन्दार को खोजूँगा और उनको मैं अपने सपने बेचकर पैसा लाऊँगा।" ब्रह्मन्ना ने कहा।

"अरे, चुप भी रह। कोई सुनेगा तो हँसेगा।" माँ ने उसे फटकारा।

किन्तु ब्रह्मन्ना को अपने सपनों में पूरा विश्वास था। उसने माँ की बात की परवाह न की। वह सपने में देखे हुए ज़मीन्दार को खोजता निकल पड़ा।

जाते जाते उसे एक गाँव दिखाई दिया। उसमें एक ज़मीन्दार का घर भी था। उस घर के सामने खड़े होकर, उसने पुकारा—"अजी साहब...." ज़मीन्दार बाहर आया। ब्रह्मन्ना को देखकर उसने पूछा—"अरे, क्या चिल्ला रहे हो?"

"मेरा नाम ब्रह्मन्ना है। मैं गंगा का छोटा लड़का हूँ। मुझे सपने आते हैं। मुझे यह सपना आया है कि आपने मेरे सपने खरीदे हैं। इसलिए मैं उन्हें आपको बेचने आया हूँ।" ब्रह्मन्ना ने कहा।

ज़मीन्दार ने बहुत से लोगों को देखा था, पर सपने बेचनेवाले को कहीं न देखा था। ब्रह्मन्ना देखने भालने में भी अच्छा था। उसने जानना चाहा कि आखिर सपना था क्या? "क्या है? वह सपना?" उसने पूछा।

"मुझे खाना देकर अपने घर में सोने दीजिए। मुझे सपना आयेगा। आप वह सपना खरीद लीजिए। एक सपने के लिए कितना देंगे?" ब्रह्मन्ना ने पूछा।

"दो आने दूँगा। ठीक है न?" ज़मीन्दार ने कहा।

"दो आने बहुत कम है। यदि एक रुपया भी न कमाकर घर गया तो मेरी माँ क्या कहेगी?" ब्रह्मन्ना ने कहा।

"अच्छा, तो एक एक सपने का चार चार आने दूँगा। चार सपने बेचकर रुपया कमालो।" ज़मीन्दार ने कहा। और ब्रह्मन्ना मान गया।

ज़मीन्दार की पत्नी न थी। एक लड़का था और घर में हर काम के लिए तरह तरह के नौकर थे।

ब्रह्मन्ना ने आराम से भोजन किया। एक कोने में सो गया। अगले दिन उठा और उठते ही ज़मीन्दार के पास गया। "हुज़ूर, मुझे सपना आया है कि आपके बाग में एक अमरूद के पेड़ पर पाँच रंगोंवाला पक्षी आकर बैठा और आपने उसे पकड़ कर पिंजरे में रखा और पाला।"

यह देखने के लिए कि ब्रह्मन्ना का सपना क्या था, ज़मीन्दार तुरत बाग में गया। जब वह अमरूद के पेड़ के पास गया, तो एक टहनी पर पाँच रंगोंवाला तोता था। वह पालतू तोता मालूम होता था, मनुष्य के पास आते ही उसने कुछ बातें कहीं। वह आसानी से पकड़ा भी गया। ज़मीन्दार उसे घर ले आया। पिंजड़े में रखकर उसे पालने लगा। जो कोई कुछ कहता, तोता तुरत वह कहकर सबको आनन्दित करता। ज़मीन्दार ने ब्रह्मन्ना को बुलाकर कहा—"ब्रह्मन्ना, सचमुच तुम्हारे सपनों को खरीदा जा सकता है। हमारे घर में किसी काम पर लग जाओ। काम के लिए तुम्हें खाना और कपड़े दूँगा और सपनों के लिए अलग पैसे।"

"सिवाय सपने देखने के मुझे कोई काम नहीं आता है। बिना खाये नीन्द नहीं आती है। बिना सोये सपने नहीं आते हैं। इसलिए अगर आप मेरे सपने खरीदना चाहते हैं, तो पेट भर आपको खाना देना होगा।" ब्रह्मन्ना ने कहा।

"....तो पेट भर खाना खाकर, सपने देखा करो।" ज़मीन्दार ने कहा।

ब्रह्मन्ना को दूसरे दिन एक और सपना आया। दुपहर के समय ज़मीन्दार के
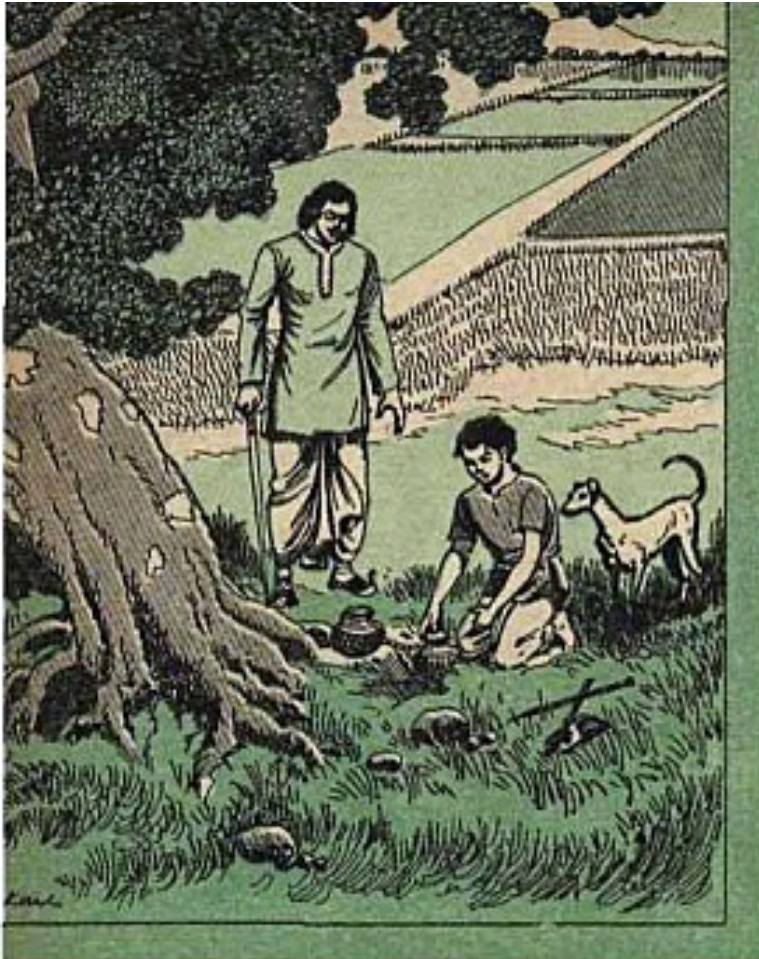
आँगन में कहीं से कोई अच्छा कुत्ता आया। ज़मीन्दार ने उसे खाना देकर अपने यहाँ रख लिया। वह रात में ज़मीन्दार के घर में किसी को न आने देता।

यह सपना भी सच निकला। दुपहर के समय कहीं से कोई शिकारी कुत्ता ज़मीन्दार के घर आया। ज़मीन्दार ने उसें खाना देकर उसे पास रखा। वह दिन भर सोता और रात भर सोकर चोरों को न आने देता।

तीसरे दिन ब्रह्मन्ना को एक और सपना आया। उसने ज़मीन्दार के पास जाकर कहा—"हुज़ूर, हमारे खेतों के दक्षिण में कीकर के नीचे जुड़वे कलश हैं।"

"ब्रह्मन्ना, यह सपना तो बड़ा अच्छा है। यदि यह सच निकला तो तुम्हें दो चवन्नी दूँगा।" ज़मीन्दार ने कहा।

यह सपना भी सच निकला। ब्रह्मन्ना ने जो जुड़वे कलश बताये थे, उनमें सोना मिला।

"हुज़ूर, अब एक रुपया पूरा हो गया है। मुझे रुपया देकर भेज दीजिये। मेरी माँ बड़ी खुश होगी।" ब्रह्मन्ना ने कहा।

"अरे, अभी ऐसी कौन-सी जल्दी है? चार सपने और बेचकर दो रुपये बनाकर जाओगे तो तुम्हारी माँ दुगनी खुश होगी।" ज़मीन्दार ने कहा। ब्रह्मन्ना मान गया।

अगले दिन उसको एक और सपना आया। उसने उठते ही ज़मीन्दार को अपने सपने के बारे में यूँ बताया—"पूर्व की ओर जाने से एक देवालय है। उसके पास ही एक गेरुवे रंग का घर है। उस में एक बुढ़िया और एक बड़ी खूबसूरत लड़की है। जब मैं गया, तो उस लड़की ने बुढ़िया के कान में कुछ कहा। बुढ़िया ने मुझे देखकर उस लड़की से शादी करने के लिए कहा। मैं मान गया। फिर तुरत

शादी के बाजे गाजे सुनाई दिये। मैं उन्हें सुनता उठ बैठा।"

"अरे, जब तुम्हारे सपने मैं खरीद रहा हूँ। तब तुम उस लड़की से कैसे शादी कर सकते हो? अगर वह लड़की इतनी सुन्दर है, तो मैं उसकी शादी अपने लड़के से ही कर दूँगा। चलो, पहिले वहाँ जाकर, उस लड़की को देख आयें।" ज़मीन्दर ने कहा।

जब दोनों पूर्व की ओर गये, तो एक गाँव में एक मन्दिर और मन्दिर के पास गेरुवे रंग का घर दिखाई दिया। उस घर में एक बुढ़िया भी थी। ज़मीन्दार ने उस बुढ़िया से पूछा—"क्या तुम्हारे घर में शादी की उम्र की कोई लड़की है?"

"हाँ है, मैं यहाँ मरने को तैय्यार हूँ। चूँकि वह लड़की मिली थी, इसलिए कोई भी उससे शादी नहीं करना चाहता है। बड़े कष्ट उठाकर उसे पाला पोसा है। जब वह मुझे मेले में मिली थी, तब उसकी उम्र तीन साल की थी। बारह वर्ष मैंने उसे पाला। शायद मेरे सारे कष्ट फ़िज़ूल जायें।" बुढ़िया ने कहा।

ज़मीन्दार ने सोचा कि वह लड़की शायद उसकी अपनी लड़की ही थी। बारह साल पहिले मेले में उसकी लड़की ही गुम हो गयी थी और फिर मिली न थी। उसी दुःख में ज़मीन्दार की पत्नी मर गई थी।

वह अपनी लड़की और बुढ़िया को अपने घर ले आया। चूँकि ब्रह्मन्ना के सपनों का कोई जवाब न था, इसलिए उसने उसका विवाह ब्रह्मन्ना से किया। दामाद और अपनी लड़की को अपने घर ही रखा। ब्रह्मन्ना को सपनों के व्यापार में यूँ खूब फ़ायदा हुआ।

भले को भला, बुरे को बुरा

पद्म देश में, अग्निदत्त नाम का प्रख्यात ब्राह्मण रहा करता था। उसको राजा से एक जागीर मिली हुई थी और आराम से ज़िन्दगी बसर कर रहा था। उसके दो लड़के थे, जिनका नाम था, सोमदत्त, और वैश्वानर। सोमदत्त सुन्दर था, पर मूर्ख था, वैश्वानर बुद्धिमान था और पंडित भी। पिता के गुज़र जाने के बाद, वे दोनों घर आये और उन्होंने पिता की जागीर आपस में बाँट ली। छोटा भाई, राजा से आदर पाता, जीवन सुख से बिता रहा था और बड़ा भाई दुर्जनों की संगति में अपना समय व्यर्थ कर रहा था।

एक दिन अग्निदत्त के एक ब्राह्मण मित्र ने सोमदत्त से कहा—"तुम क्यों अपने पिता को बदनाम करते हो, क्यों नहीं अपने भाई को देखकर लज्जित होते?" सोमदत्त को उस ब्राह्मण पर बड़ा गुस्सा आया। उसने उसको लात मारी। यह देख, वह कुछ और ब्राह्मणों को लेकर, राजा के पास गया और उससे सोमदत्त की शिकायत की। जब राजा ने सोमदत्त को पकड़ने के लिए अपने सैनिक भेजे, तो उसने उनको मरवा दिया।

यह सुन राजा बड़ा बिगड़ा। उपयुक्त सैनिक भेजकर सोमदत्त को पकड़वाया और उसको फाँसी की सजा दे दी। वह जाकर अपने भाई वैश्वानर के सामने गिड़गिड़ाया। वैश्वानर पर, राजा को आदर था, इसलिए उसने सोमदत्त की सजा कम कर दी। परन्तु उसके हिस्से की जागीर ले ली। इस प्रकार आय का रास्ता खोकर,

रामचन्द्र

सोमदत्त ने कहीं खेती करने के उद्देश्य से, जंगल में जमीन खोजनी शुरु की क्योंकि उसके सामने रोजी का और कोई रास्ता न था। उसे कहीं सपाट भूमि मिली। उस भूमि के बीच में एक पीपल का पेड़ था।

सोमदत्त ने उस पीपल के पेड़ की परिक्रमा की। वृक्ष देवता को नमस्कार किया। पूजा की। नैवेद्य चढ़ाया। वह दो बैल ले आया और उसने खेती करनी शुरु की। वह दिन रात खेत में ही काम करता। पत्नी जो कुछ खाना लाती उसे खाता।

उसकी मेहनत के कारण अच्छी फसल हुई। फसल कटने को ही थी कि पास का राजा युद्ध करने के लिए उस तरफ़ से गुज़रा। उसकी सेना ने फसल देखी और उसे लूट लिया। यह देख सोमदत्त की पत्नी रोयी। सोमदत्त नहीं घबराया। उसने पत्नी को समझाया। जो कुछ सेना के लूटने से बच गया था, उसे बटोरकर वह घर ले गया। फिर उसने पीपल के पेड़ की पूजा की। उस दिन वहीं पेड़ के नीचे रहा। रात को भी वह अकेला पेड़ के नीचे ही लेट गया। पर चूँकि उसकी सारी मेहनत मिट्टी में मिल गई थी, इस चिन्ता में वह सो न सका।

उस दिन रात को, पेड़ में से उसको एक आवाज सुनाई दी—"सोमदत्त! तुमको देखकर मैं बड़ा खुश हूँ। तुम अपना नाम फलभूति कर लो और श्रीकंठ देश जाओ। वहाँ एक राज्य है, जिसका राजा आदित्य प्रभु है। उस राजा के घर जाकर, सन्ध्या मन्त्र पढ़कर कहना—"जो अच्छा करता है, उसको अच्छा मिलता है और जो बुरा करता है, उसको बुरा। तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हें संन्ध्या मन्त्र

यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ। राजा आदित्य प्रभु फलभूति की बातें सुनकर खुश हुआ। उसको बहुत से ईनाम और ग्राम वगैरह दिये। फलभूति यक्ष की पूजा से, यकायक धनी ही न हो गया, बल्कि सब का प्रिय भी हो गया।

आदित्य प्रभु की रानी, कुवलमावली ने छुटपन में ही, डाकिनी मन्त्र सिद्धि पायी थी। बिना पति के जाने, वह भैरवार्चना करती, ताड़ी, शराब, नर माँस आदि का नैवेद्य देती। उसने आकाश गमन आदि की शक्ति भी पा ली थी।

नहीं आता, मैं सिखाता, हूँ। सीखो। मैं एक यक्ष हूँ। यह जान लो।"

सोमदत्त अपना दुख भूल गया, अदृश्य यक्ष से उसने सन्ध्या मन्त्र सीखा। सवेरा होते ही वह अपने घर गया। अपनी पत्नी को साथ लेकर, वह श्रीकंठ देश के लिए निकल पड़ा।

वह आदित्य प्रभु के राज्य में आया। सोमदत्त राजधानी में गया। उसने अपना नाम फलभूति बताया। "जो अच्छा करता है, वह अच्छा पाता है और जो बुरा करता है, बुरा।" उसने कहा।

एक दिन राजा ने रानी की भैरवार्चना देखी। राजा चकित हो गया, उसने पूछा—"यह सब क्या है?"

"प्रभु! मैं आपके कल्याण के लिए ही यह सब पूजा कर रही हूँ। इसे मैंने अपने छुटपन में, काल रात्री नाम की, ब्राह्मणी से सीखा था। नरमाँस खाकर, मैं डाकिनी साम्राज्यी भी हो गई हूँ। यदि मेरे साथ आपने भी यह उपासना करनी शुरु की, तो सब राजा आपसे हार जायेंगे।" कुवलमावली ने अपने पति से कहा।

"यह नरमाँस भक्षण क्या है? डाकिनी मन्त्र सिद्धि क्या बला है? राजाओं का जीतना क्या है? मैं यह नहीं करूँगा। आइन्दा तुम भी ये पूजा वगैरह न करो।" राजा ने कहा।

राजा के यह कहते ही, रानी ने आत्महत्या करनी चाही। जब राजा को मालूम हुआ कि वह वह पूजा नहीं छोड़ना चाहती थी, तो वह भी पूजा में शामिल होने के लिए मान गया।

रानी ने राजा से कहा—"मैं आपकी नौकरी में जो फलभूति है, उसे खाना चाहती हूँ। वह उत्तम जाति का है। इसलिए उसका माँस खाकर अर्चना की गई तो शीघ्र ही सिद्धि मिलेगी। इसमें आपकी सहायता की आवश्यकता है, हमारा रसोइया मुझे पहिले भी नरमाँस बनाकर खिला चुका है। फिर भी उससे पहिले ईशारा कर दिया जाये। आप फलभूति को उसके पास भेजकर कहलवाइये—"राजा रानी, भोजन के लिए तैय्यार बैठे हैं।" रसोइया यह सुनकर, मनुष्य को मारकर पका देगा।"

यह काम करने के लिए राजा बड़ा डरा। पर वह पत्नी की बात को ठुकरा भी नहीं सकता था। इसलिए उसने रसोइये से कहा—"तुम्हारे पास एक आदमी भेजूँगा। वह मनुष्य आते ही कहेगा—"राजा और रानी भोजन के लिए तैय्यार हैं।" तुरत उस आदमी को मारकर पका देना।"

फिर उसने फलभूति को बुलाकर कहा—"तुम रसोइये के पास जाकर कहो कि राजा और रानी भोजन के लिए तैय्यार हैं।"

फलभूति पाकशाला की ओर जा रहा था कि रास्ते में राजकुमार चन्द्रप्रभु

दिखाई दिया। फलभूति को कुछ सोना देकर उसने कहा—"मेरे पिताजी के लिए जो "कुण्डल" बनवाये हैं, वैसे मेरे लिए भी एक बनाओ। अभी जाकर बनाओ।"

"हाँ, जैसी आपकी मर्ज़ी। तुम रसोइये के पास जाकर कहो कि राजा रानी भोजन के लिए तैय्यार हैं।" यह कहकर वह कुण्डल बनवाने के लिए चला गया।

राजकुमार के यह कहते ही, रसोइये ने उसको मार दिया। पकाकर राजा रानी को परोस भी दिया। वे उसे खा गये। "फलभूति" को मरवाने के कारण राजा सारी रात भर पछताता रहा।

अगले दिन, जब फलभूति नये कुण्डल लेकर, राजा के पास आया, तो वह चकित हो गया। कुण्डल के बारे में पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उसका लड़का मारा गया था, वह सिर पीट पीटकर रोने लगा। उसने अपने को कोसा। रानी को कोसा।

मन्त्री राजा का यह प्रवर्तन न समझ सके—"क्यों यों दुःखी होते हैं? क्या हो गया है?" उन्होंने पूछा।

राजा ने जो कुछ गुज़रा था, उसे बिना छुपाये मन्त्रियों से कह दिया। मन्त्री राजा का मुँह न देख सके। उन्होंने सिर झुका लिये। फलभूति ने जो कहा था, वह ठीक निकला। जो अच्छा करता है, अच्छा पाता है, और जो बुरा, वह बुरा। राजा पुत्र शोक न सह सका। जीवन असह्य हो गया। राजा ने फलभूति को राज्य दे दिया और पत्नी के साथ उसने अग्नि में प्रवेश किया।

कुत्ता और मनुष्य

पास के ज़मीन्दार के घर शादी आयी। गाँव का मुन्शी विवाह में जाते जाते पन्नालाल को भी साथ ले गया। शादी में एक और गाँव से एक और पंडित आया। पर उसका पान्डित्य कुछ यूँहि उथला उथला-सा था। चूँकि उतना जाननेवाला भी, आस पास के गाँवों में कोई न था, इसलिए वह पंडित माना जाने लगा। उसने शादी की जगह अपना पान्डित्य दिखाने का बड़ा यत्न किया, पर उसकी चाल चली नहीं।

शादी के बाद ज़मीन्दार ने कई ऊनी शाल ईनाम में दिये। उन पर ज़मीन्दार का नाम काढ़ा हुआ था। चूँकि पन्नालाल कभी राजा द्वारा सम्मानित किया गया था, इसलिए उसको भी एक शाल मिला। परन्तु उथले पंडित को कोई शाल नहीं मिला। कई पंडितों को शाल दिया जाता देख उस उथले पंडित को बड़ी निराश हुई।

पन्नालाल शाल लेकर मुन्शी के पास आकर बैठ गया। "तुम्हारे साथ आना अच्छा है। रोज ठंड बढ़ रही है। एक शाल खरीदने की सोच रहा था। अब कोई ज़रूरत नहीं है।"

उसके पास ही उथला पंडित बैठा था। उसने सोचा कि एक ऐसे आदमी को भी शाल दिया गया था, जो शादी के लिए बुलाया भी न गया था। उसने सोचा कि यदि उसे न दिया जाता तो वह शाल उसे मिलता। उसने लोगों से मालूम कर लिया कि पन्नालाल कौन था, किस गाँव का था। उसने वह शाल चुराकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाही। उसने उसकी कुछ देर

प्रशंसा की। और उसको अपने गाँव निमन्त्रित किया।

"मैं मुन्शी के साथ आया हूँ। हम दोनों अपने गाँव चले जायेंगे। अभी मैं नहीं आ सकता। फिर कभी आयेंगे।" पन्नालाल ने पंडित से कहा।

"ऐसी ही बात हो तो अगली दशमी को आइये।. उस दिन हमारे घर समाराधना होगी।" पंडित ने कहा।

पन्नालाल के मान जाने पर पंडित ने अपने गाँव का नाम और पन्नालाल के गाँव से रास्ते के बारे में पूरी जानकारी दी।

पंडित के गाँव में पहुँचते ही, गाँववालों ने पूछा कि ज़मीन्दार साहब ने क्या दिया था। पंडित ने यह कहकर अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की कि ज़मीन्दार ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और उसको एक ऊनी शाल उपहार में दिया था। पर एक मित्र ने उससे वह ले लिया था और दशमी के दिन वह उसे ला देगा।

अष्टमी के दिन ही पन्नालाल उस गाँव के लिए निकल पड़ा। चूँकि एक दिन में वह सफर पूरा नहीं होता था, रास्ते में खाने पीने के लिए अधिक कुछ नहीं मिलता था, रात के समय काफी ठंड भी होती थी, इसलिए वह ज़मीन्दार के दिये हुए शाल को ओढ़कर थोड़ा खाना साथ बाँधकर निकल पड़ा। उस दिन, रोज़-भर पन्नालाल चलता रहा। शाम को एक गाँव में पहुँचा। और वहाँ एक धर्मशाला में ठहर गया। अभी सवेरा न हुआ था कि वह उठा और निकल पड़ा। कुछ दूर पहुँचा था कि उसे किसी का कराहना सुनाई दिया। उसी समय एक कुत्ता भी भौंका।

पन्नालाल जब पास पहुँचा, तो उसने देखा कि वह व्यक्ति बुरी तरह घायल था।

बगल में उसका कुत्ता भौं-भौं कर रहा था और जो आदमी गिरा हुआ था, उसके बदन पर सिवाय एक दुपट्टे के कुछ न था। इसलिए वह ठंड के कारण ठिठुर रहा था।

पन्नालाल ने उस आदमी को उठाकर बिठाया। जो शाल उसने ओढ़ रखा था, उसे उसने उसको ओढ़ा दिया। थोड़ी देर में उस आदमी को कुछ होश-सा आया। उठते ही उसने कहा—"भूख।"

जो कुछ खाना वह साथ लाया था, पन्नालाल ने उसका आधा पिछले दिन ही खा लिया था। आज के लिए काफ़ी खाना उसके पास था। पन्नालाल ने उसमें से कुछ उस आदमी को दिया और कुछ उसके कुत्ते को। फिर उसने उस आदमी से पूछा—"क्यों? क्या हुआ? क्यों यहाँ पड़े हुए हो?"

"क्या कहूँ....मेरी फूटी किस्मत है।" उस आदमी ने कहा। पन्नालाल को उसके जवाब पर बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने उससे कुछ और नहीं पूछा। उसकी मदद करके वह उसको अपने घर तक ले गया। उसका घर उसी गाँव में था, जिस में से वह गुज़रकर आया था।

पन्नालाल ने जब किवाड़ खटखटाया, तो उस आदमी की स्त्री ने किवाड़ खोला।

"आप फिर इसी रास्ते आयेंगे?" कहकर उस आदमी ने अन्दर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। उस आदमी का व्यवहार उसे बुरा तो लगा। पर किसी को बुरा भला कहने की आदत उसमें न थी, इसलिए वह आगे चल पड़ा।

रास्ते में पन्नालाल के पास खाने के लिए खाना न था। सूर्यास्त होते ही, ठंड बढ़ने लगी। अन्धेरा हो जाने के बाद वह पंडित का घर मालूम करके वहाँ गया।

बिना शाल के पन्नालाल को आया हुआ देख पंडित ने पूछा—"यह क्या? इतनी सरदी में बिना शाल के चलकर आये हैं?"

"शाल लाया तो था, पर रास्ते में वह किसी और के काम आ गया। समाराधना शायद कल ही है। अगर कोई काम हो, तो बताइये।" पन्नालाल ने कहा।

"समाराधना? उसको तो हमने एक और महीना स्थगित कर दिया है। अचानक मेरी पत्नी बीमार हो गई।" कहते कहते पंडितने अन्दर झाँककर देखा।

तुरत पन्नालाल को किसी स्त्री का कराहना सुनाई दिया। पंडित के दोनों लड़के मुख में अंगुली डालकर पन्नालाल की ओर खड़े-खड़े देख रहे थे।

"ओहो....यह बात है! तो पहिले आप उनकी देखभाल कीजिये।" पन्नालाल ने कहा। पंडित ने अन्दर जाकर अपनी पत्नी से कहा—"वे उसे नहीं लाये हैं।"

"....तो भला मैं क्यों कराहूँ?" कहती कहती पत्नी उठ बैठी।

"उसके जाने तक ज़रा लेटे रहो।" पंडित ने कहा।

पंडित के ही पीछे पन्नालाल गया था। उसने उनकी बातचीत सुनी। पर वह न जान सका कि पति-पत्नी किस विषय के बारे में बातें कर रहे थे। वह इतना जान गया कि पंडित उसके जाने की इन्तज़ार कर रहा था। उसने पंडित से कहा—"देखिये, आप मेरे लिए कोई तकलीफ़ न उठाइये। मैं रात कहीं सो लूँगा और सवेरे चला जाऊँगा।"

पंडित ने उसे रोका नहीं। पन्नालाल चूँकि बिना शाल के आया था, इसलिए वह उनकी नज़रों में गिर गया था।

पन्नालाल ने वह रात गाँव की एक चौपाल में काट दी। सवेरे उठकर निकल पड़ा। शाम तक वह उस गाँव में पहुँचा, जहाँ के आदमी को उसने शाल दान दे दिया था। तब तक पन्नालाल ने दो दिनों से भोजन नहीं किया था। फिर ऊपर से ठंड भी लग रही थी। बुखार-सा भी आ रहा था। पन्नालाल ने सोचा यदि उस शाल वाले के घर थोड़ा बहुत खाने को मिल गया और रात भर पीठ सीधी कर ली, तो सवेरे तबीयत सुधर जायेगी।

सौभाग्यवश उसके ग्राम में पहुँचते ही वह कुत्ता दुम हिलाता पन्नालाल के पास आया। पिछले दिन जो थोड़ा खाना उसको दिया था, वह उसे भूला न था।

पन्नालाल कुत्ते के साथ एक घर के पास गया। वहाँ उसने किवाड़ खटखटाया। पिछले दिन उसने जिसकी रक्षा की थी, उसी आदमी ने किवाड़ खोलकर पूछा—"कौन हैं आप?"

"मैं ही हूँ। वापिस मैं अपने गाँव जा रहा हूँ। बुखार आ गया है। आज रात को आपके यहाँ सोकर, सवेरे उठकर चला जाऊँगा।" पन्नालाल ने कहा।

"यह क्या कोई धर्मशाला है? जाओ धर्मशाला में जाकर सोओ।" उस आदमी ने कहा।

"मैंने ही आपको शाल दिया था?" पन्नालाल ने उसको याद दिलाया।

"शाल? क्या दिया था? कब दिया था? पगले मालूम होते हो। जाओ, जाओ...." उस आदमी ने कहा और वह उसको एक छड़ी भी घुमा घुमाकर दिखाने लगा। यह देख कुत्ता अपने मालिक पर ही भौंका। मालिक ने छड़ी से उस कुत्ते को पीटा और किवाड़ बन्द कर लिये।

सामने का घरवाला यह सब देख रहा था, पन्नालाल से पूछकर उसने सब कुछ मालूम कर लिया और उसको ग्रामाधिकारी के पास ले गया। ग्रामाधिकारी के घर पन्नालाल की खूब खातिरदारी की गई। वहीं वह उस आदमी के बारे में जान सका, जिसकी उसने रक्षा की थी। वह बड़ा कमीना और जुआखोर था। पत्नी के सब गहने बेच दिये थे। घर की सब चीज़ें उसने बेच दी थीं। जुये में कई बार हारकर उसने जबर्दस्त मार भी खायी थी। पिछली रात ऐसी ही मार खाकर वह पड़ा हुआ था, पन्नालाल ने उसकी रक्षा की थी। कुत्ते में जितनी कृतज्ञता था, उतनी भी उसमें न थी।

अगले दिन ग्रामाधिकारी ने उस कृतघ्न को बुलवाया। जब उसने शाल के बारे में पूछा, तो उसने कहा कि किसी ने उसको कोई शाल नहीं दिया था। पन्नालाल के शाल के बारे में सारे गाँव में खबर फैल गई। उस गाँव के एक व्यापारी ने एक शाल पन्नालाल को दिखाकर कहा—"यह देखिये, कहीं आपका शाल तो नहीं है? इसे कल ही इस जुआखोर के पास से मैंने बीस रुपये में खरीदा था।"

शाल पर ज़मीन्दार का नाम काढ़ा हुआ था, इसलिए आसानी से जान लिया गया कि वह शाल पन्नालाल का ही था। ग्रामाधिकारी ने जुआखोर को बुलवाया। उससे असलियत कहलवायी। व्यापारी को रुपये दिलवाये और पन्नालाल का शाल पन्नालाल को दिलवा दिया।

पन्नालाल ने उस दिन वहाँ आराम किया और अगले दिन अपने गाँव चला आया।

युद्धकाण्ड

राम ने हनुमान को बुलाकर कहा—

"हनुमान तुम राक्षस राजा विभीषण की अनुमति लेकर लंका में सीता के पास जाओ और उससे कहो कि मैं, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सुख से हैं और मेरे हाथ रावण मार दिया गया है। मालूम करो कि वह क्या कहती है...."

हनुमान रावण के घर में घुसा। वहाँ एक पेड़ के नीचे राक्षस स्त्रियों के बीच में, दुःखी सीता बैठी थी। हनुमान अपना नाम बताकर, विनम्र हो खड़ा हो गया। सीता ने उसको तुरत पहिचाना नहीं। पर जब पहिचान लिया, तो हनुमान ने उससे यूँ कहा—

"वैदेही! सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ राम सुरक्षित है। विभीषण की सहायता और वानर सेना की मदद से, उन्होंने शत्रु को मार दिया है। उनका काम पूरा हो गया है। रावण मर गया है। लंका वश में आ गई है। यद्यपि आप अब भी रावण के घर में हैं, पर विभीषण के आधीन हैं। इसलिए कोई भय की बात नहीं है। विभीषण आपको देखने आ रहा है। यह राम ने मुझे आपसे कहने के लिए भेजा है।"

यह सुन सीता बड़ी खुश हुई और तुरत कोई उत्तर न दे सकीं। "क्या

"ये रावण की दासियाँ हैं। जैसा मालिक कहें, अगर ये वैसा न करतीं, तो इनको सज़ा मिलती। इन पर क्रुद्ध होना ठीक नहीं है। इनकी कोई गलती नहीं है। यदि कोई गलती हो भी, तो उदार पुरुष उनको क्षमा कर सकते हैं?" सीता ने कहा।

"आप हर तरह से राम के योग्य पत्नी हैं। राम के पास जाकर, क्या कहने के लिए कहती हैं?" हनुमान ने कहा।

"मैं अपने पति को देखना चाहती हूँ।" सीता ने कहा।

"राम को अवश्य देखोगे।" कहकर, हनुमान राम के पास चला आया। उसने राम से कहा—"सीता बहुत दुःखी हैं, उनको जाकर देखिये। यह जानकर कि आप विजयी हुए हैं, वे आपको देखना चाहती हैं।"

राम की आँखों में आँसू आ गये। उन्हें न सूझा कि क्या करें, सीता बहुत दिनों से रावण के घर थीं। यदि वे उन्हें स्वीकार करते हैं, तो बदनामी होती है। निर्दोष को यदि अस्वीकार करते हैं, तो वह एक और गलती होगी।

सोच रही हैं। मुझे क्या बताओगी?" हनुमान के यह पूछने पर, सीता ने सम्भल कर कहा—"यह खुश खबरी सुनकर मेरे मुख से बात नहीं निकल रही है। तुम्हारी कैसे प्रशंसा करूँ, यह भी मुझे नहीं सूझ रहा है। तुम्हें क्या उपहार दें? तुम्हारे लायक कोई चीज़ तीनों लोकों में ढूँढ़ें नहीं मिलेगी।"

"इन राक्षस स्त्रियों को, अशोक वन में जिन्होंने आपके लिए अपशब्दों का उपयोग किया था मैं चीर फाड़कर मार देना चाहता हूँ। अनुमति दें।" हनुमान ने कहा।

उन्होंने विभीषण की ओर मुड़कर कहा—"तुम सीता को अच्छी तरह नहलाओ धुलाओ। शरीर पर सुगन्धित द्रव्य लेपन करवाओ। आभूषणों से अलंकृत करके शीघ्र यहाँ लाओ।"

विभीषण ने अपनी स्त्रियों द्वारा, यह बात सीता तक पहुँचवायी। सीता ने कहा कि बिना स्नान के ही वह अपने पति को देखेगी। परन्तु विभीषण ने कहा कि जैसा राम ने कहा है, वैसा करना ही उचित है।

स्त्रियों ने सीता को स्नान कराया। शरीर पर सुगन्धित द्रव्य लगाये। उत्तम वस्त्र पहिनाये। सुन्दर पालकी में उन्हें बिठाकर, बहुत-से राक्षसों को साथ लेकर, विभीषण उनको राम के पास ले गया।

राम इसी दुविधा में थे कि सीता को कैसे स्वीकार किया जाये या कैसे त्यजा जाये, पर ज्योंहि विभीषण ने आकर बताया कि सीता आयी हुई थीं, तो उन्हें खुशी भी हुई कि आखिर, वे सीता को देखने जा रहे थे। उन्होंने विभीषण से कहा—"सीता को मेरे सामने लाओ।"

विभीषण की आज्ञा पर सैनिकों ने वहाँ इकठ्ठे हुए वानरों को दूर भगा दिया। राम ने विभीषण से कहा—"क्यों इन सबको भगा रहे हो? ये पराये नहीं हैं। मेरे अपने हैं, आपत्ति के समय, स्वयंवर, विवाह, यज्ञ आदि में, स्त्रियाँ प्रजा के बीच आ सकती हैं। यह युद्ध भूमि है। सीता मेरे वियोग में दुःखी है। इसलिए इस समय, ये सब उसको देख सकते हैं।"
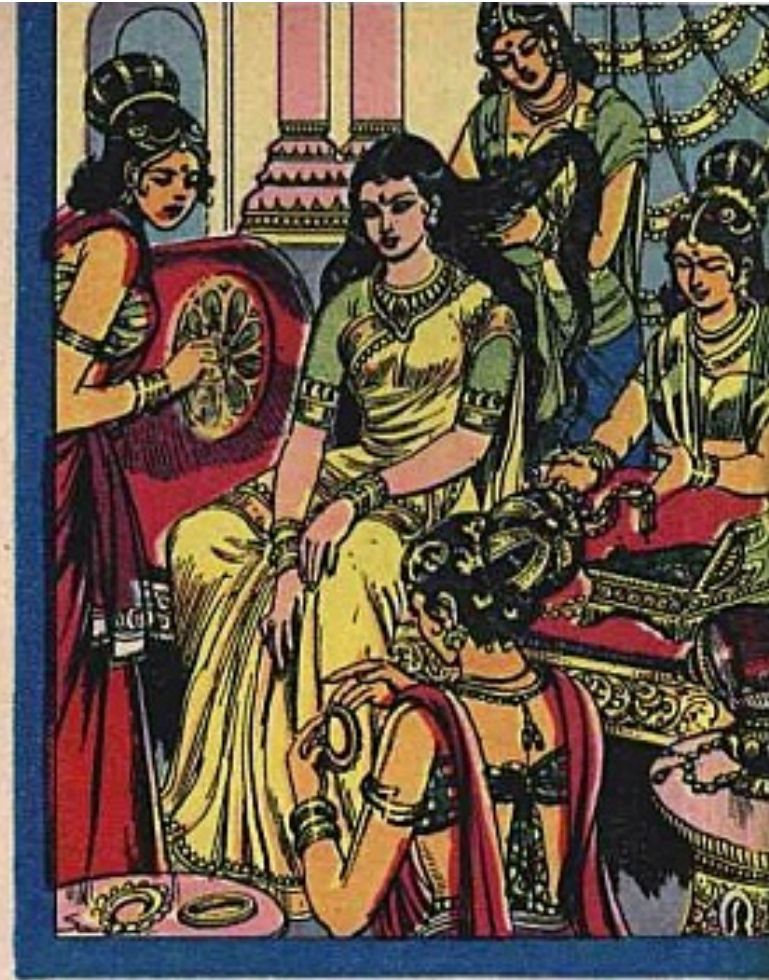
विभीषण जाकर, सीता को राम के पास ले आया। राम ने, जो बातें सीता से कहीं, उनमें सुग्रीव, लक्ष्मण आदि को, प्रेम की ध्वनि नहीं दिखाई दी, इसलिए

वे कुछ दुःखी थे। सीता शर्माती, लजाती राम के सामने आयीं। उनके पीछे विभीषण आया। इतने आदमियों के सामने सीता अपना मुँह न दिखा सकीं। उन्होंने साड़ी से अपना मुँह ढ़क लिया और राम की ओर देखती खड़ी रहीं।

राम ने सीता को देखकर, यूँ कठिन स्वर में कहा—"सीता, जो पराक्रमी करता है, वह मैंने किया है। शत्रु को मारकर, फिर तुम्हें पाया है। शत्रु ने जो मेरा अपमान किया था, उसका मैंने प्रतीकार कर दिया है। मेरा प्रयत्न सफल हो गया है। मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी है। सुग्रीव और विभीषण का प्रयत्न सफल हो गया है। परन्तु यह सब मैंने तुम्हारे लिए नहीं किया है। मेरे वंश पर जो कलंक लगा था, उसे हटाने के लिए किया है, मुझे कोई काम नहीं है। तुम जहाँ चाहो, वहाँ चली जाओ। मैं ये बातें सोच समझकर ही कह रहा हूँ। जो बहुत दिन परायों के यहाँ रही हो, उसे कोई भी स्वाभिमानी पुनः ग्रहण नहीं करता है। जो तुम्हारा पोषण करें, उनके पास जाओ। लक्ष्मण या भरत या वानर राजा सुग्रीव या राक्षस राजा विभीषण, तुम्हारा भरण पोषण कर सकते हैं। जहाँ तुम समझती हो कि तुम सुखी होगी, वहाँ रहो।"

इतने दिन पति के वियोग में सीता दुःखी रही थीं। अन्त में मिलने पर पति से उन्होंने मीठी बातों की आशा की थी। मगर जब ये बातें सुनने को मिलीं, तो वे खड़ी खड़ी आँसू बहाने लगीं। ऐसी बातें उन्होंने राम के मुँह कभी न सुनी थीं। इसलिए अब इस अपमान के कारण, उनका सिर और झुक गया। फिर उन्होंने कहा—"वीर हो, क्यों अज्ञानी की तरह,

ये कठोर बातें कही हैं ? जैसा तुम्हें सन्देह हो रहा है वैसा मैंने कोई दोष नहीं किया है। कुछ दुष्ट स्त्रियों के कारण सारी स्त्री जाति पर सन्देह कर रहे हो। तुम मेरा स्वभाव जानते हो। इसलिए वह सन्देह छोड़ दो। इतने दिनों के सहवास के बाद भी, यदि तुम मेरा मन न जान सके, तो अब जान पाओगे, इसके कोई आसार नहीं है। हनुमान जब मुझे खोजता आया था, अगर तभी कहते कि तुमने मेरा परित्याग कर दिया था, तभी मैं आत्म हत्या कर लेती। तुम्हें और तुम्हारे मित्रों को इतना कष्ट न देती। तुम्हें अभी तक नहीं मालूम हुआ है कि तुमने अग्नि के समक्ष मुझसे विवाह किया था या हम दोनों इतने दिन साथ रहे थे।"

सीता ने राम से यह कहकर, लक्ष्मण से कहा—"लक्ष्मण, ये बातें सुनकर मैं जीना नहीं चाहती। चिता बनाओ। मैं उसमें घुसकर प्राण त्याग दूँगी। जो पत्नी, सबके सामने छोड़ दी गयी हो, उसके सामने कोई और रास्ता नहीं है।"

लक्ष्मण ने राम की ओर देखा। यह देख कि राम को सीता का अग्नि प्रवेश

करके, आत्म हत्या करने पर आपत्ति न थी, उसने चिता की व्यवस्था कर दी। सिर झुकाये हुए राम की उन्होंने प्रदक्षिणा की, धीमे-धीमे वे चिता के पास आयीं। देवता, ब्राह्मणों को नमस्कार किया। हाथ जोड़कर, "मैंने, राम के सिवाय यदि किसी और के बारे में न सोचा हो यदि राम का सन्देह गलत हो, यदि मैंने मनसा, वाचा कर्मणा, राम की इच्छा का उल्लंघन न किया हो, तो सबको देखनेवाली अग्नि मेरी रक्षा करेगी।" प्रदक्षिणा करके, सीता ने अग्नि में प्रवेश किया।
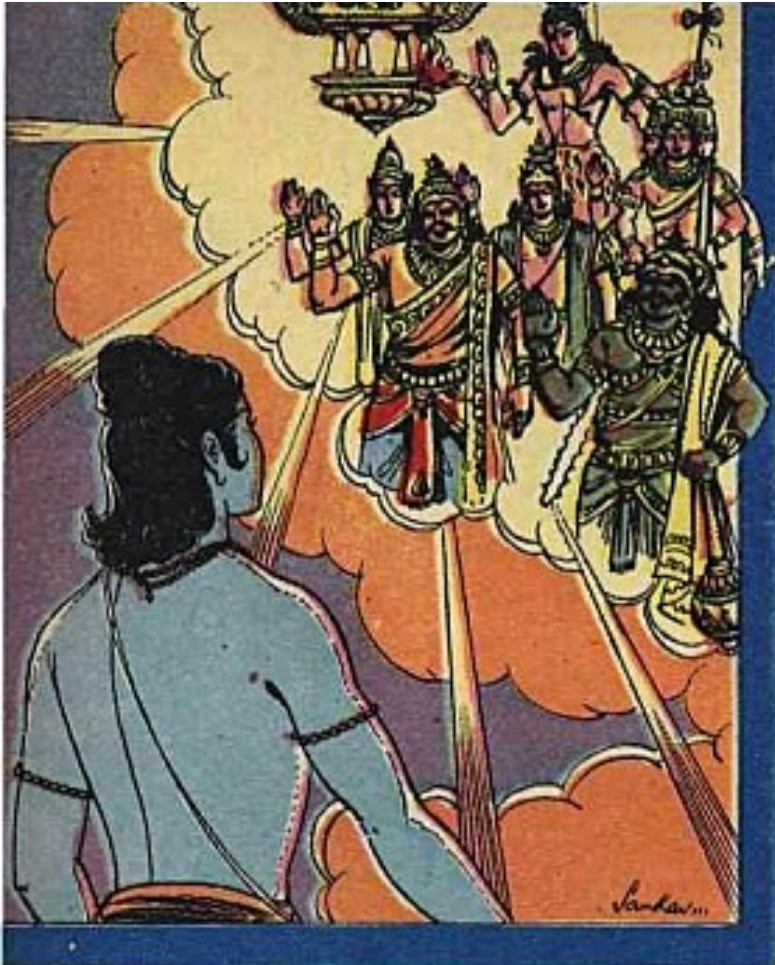
यह देख, वानरों और राक्षसों ने हाहाकार किया। वह हाहाकार सुनकर, राम दुःख में आँसू बहाने लगे। तब कुबेर, यम, देवेन्द्र, वरुण, शिव, ब्रह्मा आदि प्रकाशमान विमानों में लंका में उतरकर, राम के पास आये। उन्होंने हाथ उठाकर कहा—"लोक कर्ता हो। ज्ञानी हो। सीता जब अग्नि में प्रवेश कर रही हैं, तो यूँ क्यों खड़े हो?"

"मैं दशरथ का लड़का हूँ। यही मैं सोच रहा हूँ। मैं परोपकार के लिए क्यों ऐसा पैदा हुआ, यह ब्रह्मा ही बतायें।" राम ने कहा।

"तुम साक्षात् नारायण हो। सीता लक्ष्मी है। रावण के संहार के लिए तुमने भूमि लोक में मानव जन्म लिया है। रावण का बध हो गया है, तुम वैकुण्ठ आओ।" ब्रह्मा ने कहा। ब्रह्मा के इस प्रकार कहते ही अग्नि सीता को उठाकर, चिता से बाहर निकल आया। अग्नि के मानव रूप ग्रहण करते ही चिता बिखर गई।

अग्नि ने सीता को लाकर, राम के पास आकर कहा—"यह लो, तुम्हारी सीता, यह निर्दोष है। कोई पाप इसने नहीं किया है। इसका मन एक क्षण के लिए तुमसे विचलित होकर किसी और पर नहीं लगा। उसका मन बदलने के लिए रावण ने हर तरह से प्रयत्न किया। परन्तु वह सफल न हुआ। इसलिए इसको ग्रहण करो। यह मेरी आज्ञा है।"

"मैं जानता हूँ कि सीता ने कोई पाप नहीं किया है। परन्तु सदाचार का ख्याल करते हुए, उसको अग्नि में प्रवेश करता देख, चुप रहना पड़ा। नहीं, तो संसार मुझ को कामान्ध कहता। अग्नि से भी अधिक पवित्र, सीता का रावण क्या बिगाड़ सकता है? अब तीनों लोकों में स्पष्ट हो

गया है कि सीता निर्दोष है। मैं उसको ग्रहण करूँगा।"

तब शिव ने राम से कहा—"राम, स्वर्ग से, तुम्हारा पिता विमान में आये हैं। देखो। उन्होंने वचन निभाया था, इसलिए उनको इन्द्रलोक मिला था।"

विमान में आये हुए दशरथ को देखकर, राम लक्ष्मण ने उनको नमस्कार किया। दशरथ ने राम को पास बुलाकर, उसका आलिंगन करके कहा—"बेटा, तुमसे अलग होकर, मुझे स्वर्गीय सुखों से भी कोई सन्तोष नहीं मिलता। तुम्हारे वनवास की बात और कैकेयी की बातें अब भी मुझे चुभ रही हैं। परन्तु अब मुझे मालूम हुआ है कि देवताओं ने ही तुम्हारे पट्टाभिषेक में विघ्न पहुँचाया था, ताकि रावण का संहार हो सके। तुम्हारा वनवास समाप्त हो गया है। अब तुम अयोध्या जाकर, अपना राज्याभिषेक कर लो। तुम्हें देखकर, कौशल्या बड़ी खुश होंगी।" उन्होंने लक्ष्मण और सीता को भी कुछ उत्तम परामर्श दिये।

दशरथ के स्वर्ग चले जाने के बाद, इन्द्र ने राम की प्रशंसा करके, कोई वर

माँगने के लिए कहा। राम ने कहा कि जो वानर और भालू उसके लिए लड़ते युद्ध में मारे गये थे, उन सबको पुनः जीवित कर दिया जाये। इन्द्र ने वैसा ही किया। जीवित वानर, मरे हुए वानरों को पुनः जीवित होता देख, बड़े चकित हुए। फिर सब देवता चले गये।

राम उस दिन रात को सुख से सोये। अगले दिन सवेरे विभीषण ने निमन्त्रण दिया कि वह उनको स्नान करवायेगा। वस्त्र और आभूषण पहिनायेगा।

"वह सब सुग्रीव आदि को करवाओ। मेरे भाई ने शपथ की थी कि यदि मैं चौदह वर्ष पूरे होते ही वापिस न गया, तो वह प्राण त्याग देगा। जो उसने कहा है, वह करके रहेगा। उस हालत में, मेरे लिए स्नान, वस्त्र, अलंकरण की क्या आवश्यकता है? मुझे तुरत अयोध्या जाना है।" राम ने कहा।

"मैं एक रोज पुष्पक विमान में तुम्हें अयोध्या पहुँचा सकता हूँ। कुछ देर पहिले कुबेर पास था, पर उसका विमान उसे न देकर, मैंने तुम्हारे लिए रखे रखा। मैं आपको, आपके भाई और पत्नी को, जो आतिथ्य दूँ, उसे स्वीकार करके जायें, यही मेरी प्रार्थना है।" विभीषण ने कहा।

"तुम्हारी भक्ति काफ़ी है। मेरा मन भरत, मेरी मातायें और दूसरे लोगों को देखने के लिए तड़प रहा है। मेरा वनवास पूरा हो गया है। भरत ने बड़ी प्रतीक्षा की है। मैं उस हालत में यहाँ कैसे रह सकता हूँ। तुमने यह पुष्पक विमान दिया है। यह ही मेरे लिए बहुत है।" राम ने कहा।

स्वरोचि की कथा

वरुणा नदी के तट पर अरुणास्पद नामक नगर में एक ब्राह्मण युवक रहा करता था। वह निष्ठवान, धर्मपरायण, परम साधु था। आधी रात को भी कोई आता, तो उसका आतिथ्य करता। उसकी बड़ी इच्छा थी कि सारे संसार को घूमकर देखे।

एक बार उसके घर एक अतिथि आया। वह मन्त्रवेत्ता था और औषधियों का प्रभाव जानता था। जादू की औषधियों के प्रभाव से, एक घड़ी में कितने ही योजन दूर जाया जा सकता था। उस अतिथि ने कहा। "अगर तुम भी देश में घूमना फिरना चाहो तो तुम्हारे पैरों पर एक लेप पोते देता हूँ।" उसने कहा।

उस लेप के प्रभाव में प्रवर हिमालय पहुँच गया। वहाँ के आश्चर्य देखते, घूमते फिरते उसके पैर का लेप पिघल गया और वह वापिस घर न आ सका। उसी समय उसको वरूथिनी नाम की गन्धर्व स्त्री का वीणा वादन सुनाई पड़ा। प्रवर वरूथिनी के पास आया। उसने उससे अपने घर का रास्ता बताने की प्रार्थना की।

परन्तु वरूथिनी उसको देखते ही उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई। उसने उसको अपने साथ रहने के लिए कहा। परन्तु प्रवर यह न माना। "मैं अग्नि पूजक हूँ। शाम तक मुझे घर पहुँच जाना है और अग्नि की पूजा करनी है।"

वरूथिनी ने उसको वहीं रोकने का बड़ा प्रयत्न किया। आखिर प्रवर ने अग्निहोत्र का ध्यान किया और उसके अनुग्रह से अपने घर पहुँच गया।

प्रवर उसकी इच्छा पूरी किये बगैर ही चला गया था, इसलिए वरूधिनी चिन्तित बैठी थी कि कलि नाम का गन्धर्व, जो उससे प्रेम करता था प्रवर का रूप धारण करके आया। यूँ वरूधिनी भी, वह आगन्तुक प्रवर ही था, यह सोचकर उसके साथ रहने लगी। कुछ दिनों बाद वरूधिनी के उस गन्धर्व से एक तेजस्वी लड़का पैदा हुआ। क्योंकि वह स्वभावतः तेजस्वी था, इसलिए उसका नाम स्वरोचि रखा गया। उसने धनुर्वेद के साथ सब वेदों का अध्ययन किया और वह सर्व कला प्रपूर्ण कहलाया।

और इधर इन्दीवर नाम के विद्याधर के मनोरमा नाम की एक लड़की पैदा हुई। उसकी दो सहेलियाँ थीं, जिनका नाम विभावरी और कलावती था। विभावरी मन्दर नाम के विद्याधर की लड़की थी। कलावती, पार नाम के मुनीश्वर की थी। पार ब्रह्मचारी ही था कि वह पुंजकीस्थल नामक अप्सरा से पैदा हुई थी। पुंजिकीस्थल उसे जन्म देकर छोड़कर स्वर्ग चली गई। और चूँकि वह बच्ची चन्द्रकिरणें पीती बड़ी हुई थी, इसलिए उसका नाम कलावती रखा गया।

एक दिन मनोरमा अपनी सहेलियों विभावती और कलावती के साथ कैलास गिरि के पास घूम रही थी। वह एक अस्थिपंजर-से तपस्वी को देखकर हँसी। तपस्वी ने क्रुद्ध होकर कहा—"राक्षस द्वारा सताये जाओ।"

तब उसकी सहेलियों ने कहा—"अरे, तपस्या करनेवाले को इतना गुस्सा क्यों भला?" वह तपस्वी उनपर भी क्रुद्ध हुआ। "तुम भयंकर रोग से पीड़ित होगे।" उसने विभावरी और कलावती को शाप दिया। तुरत वे रोगग्रस्त हो गये।

इसके बाद एक राक्षस मनोरमा का पीछा करने लगा। वह भयभीत हो भागी जा रही थी कि स्वरोचि को दिखाई दी। स्वरोचि के पूछने पर उसने अपनी और अपने सहेलियों की बात बतायी। "मुझे अस्त्रहृदय नाम की विद्या आती है, वह रुद्र से स्वयंभू को, स्वयंभू से वशिष्ट को, फिर मेरा नाना को उनसे विवाह के समय मेरे पिता को और उनसे मुझे मिली है। वह विद्या मैं तुम्हें बताती हूँ। तुम उसकी सहायता से उस राक्षस को मार दो। जो मेरा पीछा कर रहा है।" उसने

कहा और स्वरोचि ने वैसा ही किया। वस्तुतः वह राक्षस मनोरमा का पिता ही था। जब वह एक बार ब्रह्ममित्र नाम के मुनि के पास आयुर्वेद सीखने गया, तो उसने सिखाने से इनकार कर दिया। परन्तु जब ब्रह्ममित्र अपने शिष्यों को आयुर्वेद सिखा रहा था, उसने भी छुप छुपकर सीख लिया। जब वह पूरी तरह आयुर्वेद सीख गया, तो वह मुनि को देखकर अपनी हँसी न रोक सका। मुनि ने सच जानकर उसको शाप दिया कि वह राक्षस हो जाये। इन्दीवर जब मुनि के पैरों पड़ा, तो उसने दयावश कहा कि स्वरोचि के कारण, वह शाप विमुक्त हो जायेगा। इन्दीवर ने शाप विमुक्त होकर, मनोरमा को स्वरोचि को दे दिया और उसने उसे वह आयुर्वेद विद्या भी सिखा दी, जिसे वह जानता था।

स्वरोचि मनोरमा से विवाह करने के लिए तैय्यार हो गया। उसने कहा जब उसकी सहेलियाँ रोगग्रस्त थीं, तब वह कैसे सुख अनुभव करे। तब स्वरोचि ने आयुर्वेद से विभावरी और कलावती रोग ठीक कर दिये। मनोरमा के साथ, उसने उनसे भी विवाह किया और सुख से रहने लगा। मनोरमा के विजय, विभावरी के मेरुनन्द, कलावती के दुभास नाम के लड़के हुए।

एक बार जब वह शिकार खेल रहा था, तो वनदेवी ने हरिणी के रूप में उसके सामने आकर कहा—"मैंने तुम्हें प्रेम किया है, मुझे आलिंगन करो।" स्वरोचि ने चकित होकर ज्योंहि उसको गले लगाया त्योंहि वनदेवी स्त्री रूप में प्रत्यक्ष हुई और उसकी चौथी पत्नी बनी। उसके एक दैवीय लड़का हुआ, वह ही स्वरोचिषमनु था।

संसार के आश्चर्य :

४३. कोमेड़ो की बड़ी छिपकलियाँ

मानव के आने से पहिले, भूमि पर बड़ी बड़ी छिपकलियाँ होती थीं। वे तो कभी की लुप्त हो गईं। पर उनकी सन्तान अब भी पूर्वीय द्वीपों में है। कोमाडो, फ्लोरिस, रिंटजा द्वीपों में ये हैं। इनकी लम्बाई १४ फीट तक होती है। ये माँसाहारी हैं। सूअर के बच्चे और हरिणों के बच्चे खाकर जीती हैं।

Photo by R. Shinde
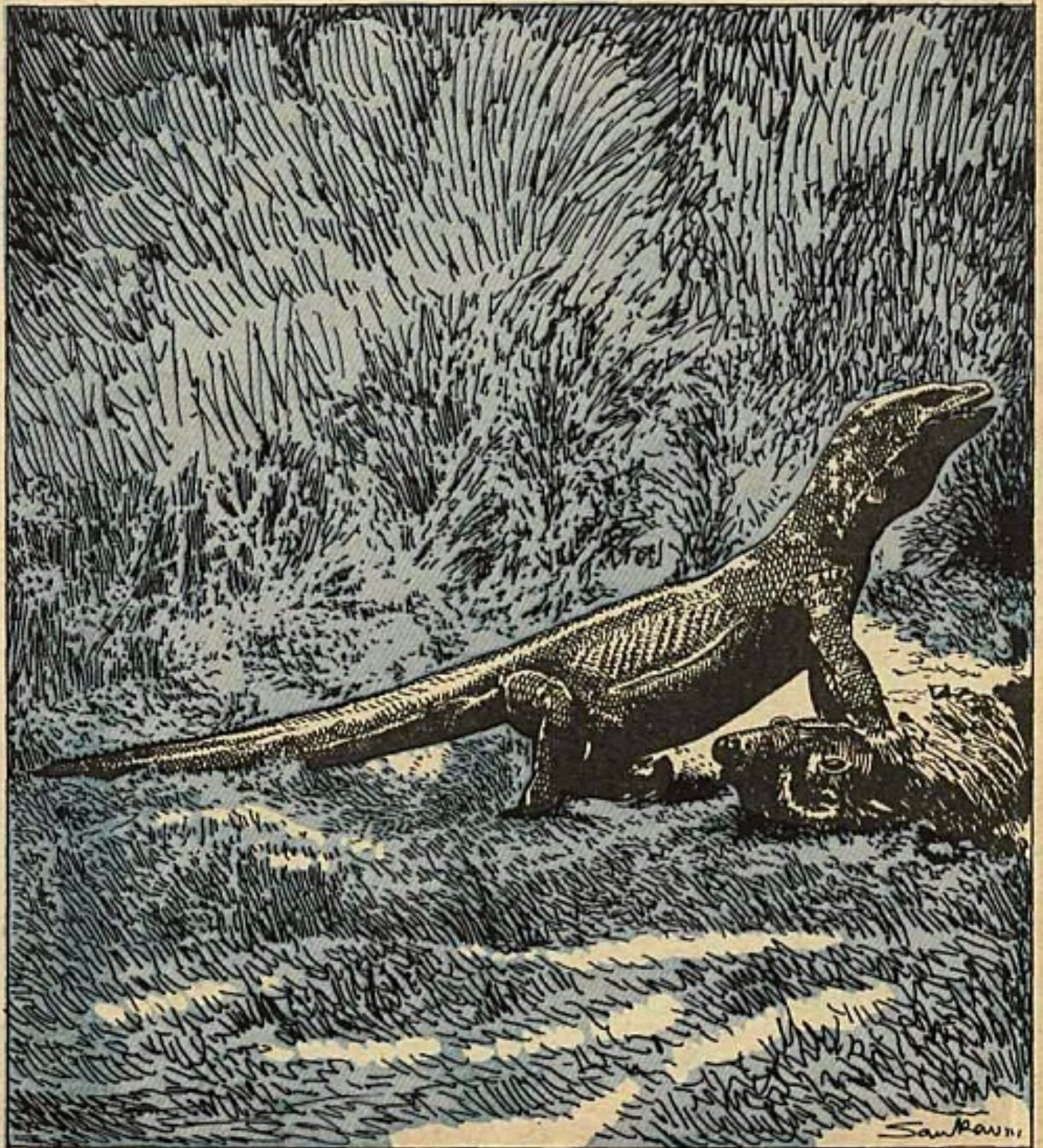
पुरस्कृत परिचयोक्ति

कमल दण्ड-सी गर्दन मेरी !

प्रेषक : रायबहादुरसिंह - इंदोर

Photo by R. Shinde
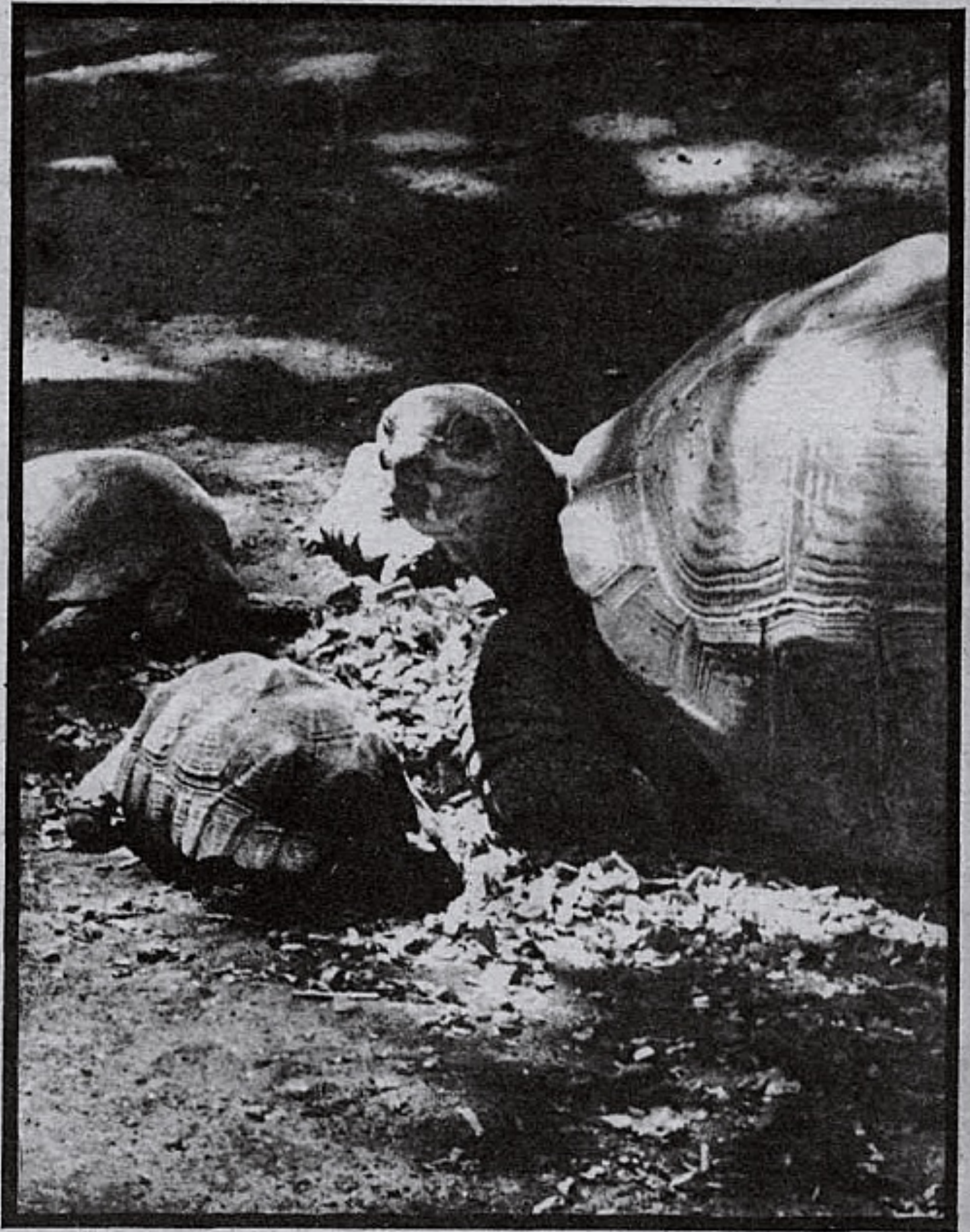
पुरस्कृत
परिचयोक्ति

वज्र दण्ड-सी पीठ है तेरी !!

प्रेषक :
रायबहादुरसिंह - इंदोर

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

सितम्बर १९६५ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें !

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिखकर निम्नलिखित पते पर तारीख ७ जुलाई १९६५ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन,
वड़पलनी, मद्रास-२६

जुलाई – प्रतियोगिता – फल

जुलाई के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।
इनके प्रेषक को १० रुपये का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो: कमल दण्ड-सी गर्दन मेरी!
दूसरा फ़ोटो: वज्र दण्ड-सी पीठ है तेरी !!

प्रेषक: रायबहादुरसिंह,
१०, कुम्हार खाड़ी - इंदोर (म.प्र.)

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works, 2 & 3, Arcot Road, Madras-26. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'